मार्कण्डेय पुराण

भगवानदास अवस्थी, एम० ए०

श्री मार्कण्डेय पुराण (in Hindi)

Markandeya Purana

—:०:—

(समस्त कथाएँ, उपकथाएँ, नीति, उपदेश आदि)

translated रूपान्तरकार
अनेकानेक ग्रंथों के प्रणेता
पं० भगवानदास अवस्थी, एम० ए०
Bhagwandas Awasthi

प्रकाशक
ज्ञानलोक
दारागंज, प्रयाग

प्रथमबार] १६५२ [मूल्य ४॥)

प्रकाशकः—
ज्ञानलोक
दारागंज, प्रयाग।

मुद्रकः—
कृष्ण स्वरूप सक्सेना,
कुमार प्रिन्टिंग वर्क्स
दारागंज, प्रयाग।

आत्म-निवेदन

श्री मार्कण्डेय-पुराण में महाभारत के सम्बन्ध में उठने वाली पांच शंकाओं का समाधान दिया गया है। और महाभारत हमारा पंचम वेद है, उसमें हमारे धर्म की सभी बातों का स्पष्टीकरण है।

एक बात और है। दुर्गासप्तशती एक ऐसा अपूर्व ग्रन्थ है जिस का पाठ प्रतिदिन लाखों ही नहीं करोड़ों हिन्दू करते हैं। उसमें आदि शक्ति महामाया के वीरत्वपूर्ण भोग-मोक्ष-दायक माहात्म्य का विशद वर्णन है। और उसी सप्तशती की कथा मार्कण्डेय पुराण से ली गई है। इसी से मार्कण्डेय पुराण का महत्व स्पष्ट है।

आज इस बीसवीं शताब्दी में भी, धर्म-प्राण हिन्दू जनता को बहुत कुछ आवश्यक और उचित शिक्षा अपने प्राचीन ग्रन्थों से मिल सकती है। हिन्दू समाज जीवनी शक्ति-संचार करने वाले ज्ञान और धर्म को इनके द्वारा समझ सकता है। इनके अध्ययन से पता चलेगा कि हिन्दू क्या-कैसे थे और क्यों, वे क्या-कैसे होते गये और किन कारणों से, धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक बातों में किस प्रकार और क्यों परिवर्तन होते गये और उनका क्या प्रभाव पड़ा। सशक्त, सफल, सुख-समृद्धि शाली हिन्दुओं के क्या-कैसे आदर्श, आचार-व्यवहार, रीति-नीति, धार्मिक-सामाजिक सिद्धान्त और आचरण रहे हैं? इसी कारण मैं हिन्दू धर्म के इन प्रमुख ग्रन्थों को इस रूप में हिन्दी-संसार के समक्ष रखने का साहस कर रहा हूँ।

यदि धर्म-प्राण हिन्दू-जनता अपने पूर्व-काल की सफलता-समृद्धि के मूल कारण और इधर हजारों वर्षों से चली आने वाली अनेक प्रकार की पराजय और अवनति के प्रमुख कारणों को इन ग्रन्थों के पारायण से भली प्रकार जान सकी और धर्म के यथार्थ तत्वों को समझ कर, धर्म के नाम पर प्रचलित होने वाली विनाशकारी रूढ़ियों से अपना पीछा छुड़ा कर, प्राचीन आदर्शों को सामने रख धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक अभ्युन्नति की ओर अग्रसर हो सकी, तो मैं अपने इस प्रयास को सफल समझूँगा।

भगवान दास अवस्थी

मार्कण्डेय पुराण

की

विषयानुक्रमणिका

जैमनि ऋषि का मार्कण्डे जी से महाभारत के सम्बन्ध में पाँच प्रश्न करना; मार्कण्डेयजी का वपु नाम अप्सरा को दुर्वासा जी द्वारा शाप दिये जाने का वर्णन करना; कनक और कन्धर नामक पक्षियों का राक्षस के साथ युद्ध और पक्षियों की उत्पत्ति, पक्षियों द्वारा शमीकमुनि को अपने शाप का कारण बताया जाना; पक्षियों का विंध्यांचल पर्वत पर पहुँचना; जैमिन ऋषि का विन्ध्याचल पर चारों पक्षियों के पास पहुँच कर अपने पांचो प्रश्न करना, उनका उत्तर देते हुए पक्षियों द्वारा चतुर्व्यूह अवतार का वर्णन; इन्द्रविक्रिया का वर्णन तथा द्रौपदी का पाँच स्वामियों की पत्नी होने का कारण; बलदेव जी द्वारा ब्रह्महत्या तथा उसका कारण; विश्वामित्र के कोप के कारण राजा हरिश्चन्द्र का राज्य-च्युत होना तथा द्रौपदी के पुत्रों की उत्पत्ति का वर्णन; पक्षियों द्वारा राजा हरिश्चन्द्र की कथा का वर्णन; विश्वामित्र और वशिष्ठ का क्रमशः बगुला और सारस बनकर आपस में घोर युद्ध करना; पिता-पुत्र सम्वाद में मरण के पश्चात् जीव की गति दशा का, गर्भस्थ जीव के दुःखों का, रौरवादि नरकों का वर्णन; राजा विपश्चित और यमदूत का सम्वाद; किस-किस पाप से कौन-कौन नरक मिलते हैं; विपश्चित का सब नरक वालों के साथ स्वर्ग गमन; पतिव्रता ब्राह्मणी की कथा और अनुसूया के पातिव्रत महत्व का वर्णन; ब्रह्मा के अंश से चन्द्रमा, शिव के अंश से दुर्वासा और विष्णु के अंश से

दत्तात्रेयजी की उत्पत्ति; दत्तात्रेय जी की आराधना करने से देवताओं की दैत्यों पर विजय; राजा कार्तवीर्य की कथा; राजा शत्रुजित के पुत्र ऋतध्वज का कुवलायाशव नामक उपाधि धारण करना; कुवलयाश्व का पातालकेतु नाम राक्षस को मारकर पाताल में मदालसा से विवाह करना; कपट मुनि के कारण मदालसा का वियोग, नागराज अश्वतर के प्रयत्न से पुनः मदालसा की उत्पत्ति; कुवलयाश्व का पुनः मदालसा को प्राप्त करना; मदालसा को पुत्र प्राप्ति तथा उसको बहलाने के मिस से मदालसा का पुत्र को निर्ममात्मक उपदेश; मदालसा के तीनों पुत्रों का विरक्त हो जाना, चौथे पुत्र को मदालसा का अनुशासन; मदालसा का अपने चौथे पुत्र अलर्क से राजाओं के कर्मों का, वर्णाश्रम का, गृस्थ धर्म का । पंचयज्ञ, जातकर्म, नैमित्तिक क्रिया और श्राद्ध आदि का वर्णन; पार्वण श्राद्ध की विधि, श्राद्धों में वर्ज्यावर्ज्य; तिथी और नक्षत्र के अनुसर श्राद्ध का फल; सदाचार आदि व्यवस्था; शुद्धाशुद्ध और वर्ज्यावर्ज्य का निर्णय; मदालसा का अपने पुत्र अलर्क को अन्तिम उपदेश देकर अपने पति राजा ऋतध्वज के साथ तप करने के हेतु वन को जाना, राज्य छिन जाने पर अलर्क को आत्मविवेक होना; दत्तात्रेय जी से राजा अलर्क को आत्मज्ञान; योगभ्यास का, योग की सिद्धियों का, योगिचर्य्या, योगिधर्म में ओंकार स्वरूप का, मृत्यु आदि अरिष्टों के लक्षण का वर्णन; जड़ोपाख्यान की समाप्ति, सुबाहु और काशिराज का संवाद और ज्ञान पाकर अलर्क का विरक्त हो जाना; मार्कण्डेय जी का क्रौष्टुकि के प्रति ब्रह्मा की उत्पत्ति वर्णन करना; मन्वंतरों और देवताओं के वर्ष की संख्या तथा ब्रह्मा जी की आयु का प्रमाण; प्राकृति- वैकृत सर्ग अर्थात् जगत की उत्पत्ति-सृष्टि का वर्णन; सृष्टि के आदि में मनुष्यों की दशा और स्वभाव; स्वायम्भुवमनु और शतरूपा से अनेक सन्तानों की उत्पत्ति, दुःस नामी यक्षों के दुःसहरूप दुःख सन्तान, उसके नाम और गुण; रुद्र-सर्ग का वर्णन, मवन्तर की संख्या और सातों द्वीप

का वृत्तान्त; पृथ्वी और द्वीपों का प्रमाण, समुद्र, पर्वत और जम्बूद्वीप, मन्दारादि पर्वतों का वर्णन; गंगावतार की कथा; भारतवर्ष का विभाग तथा उसके पर्वत और नदियों का वर्णन; भगवान कूर्म पर भारतवर्ष स्थिति; भद्राश्व, केतुमाल, किम्पुरुष, हरि, इलावर्त, रम्यक्, और हिरण्य नामक वर्षों का वर्णन; एक ब्राह्मण का हिमाचल पर्वत पर पहुँचना, वरूथिनी नाम अप्सरा का उसपर आसक्त होना और ब्राह्मण का उसकी प्रार्थना को ठुकरा देना, कलि नाम गन्धर्व का ब्राह्मण रूप होकर वरूथिनी से स्वरोचि नाम के एक पुत्र की उत्पत्ति; स्वरोचि का मनोरमा, विभावरी और कलावती आदि से विवाह; हंसिनी और चक्रवाकी तथा हरिण और हरिणियों का परस्पर वार्तालाप; स्वरोचि के पुत्र स्वारोचिष के जन्म की कथा; स्वारोचिष मन्वन्तर के देवताओं, ऋषियों और राजाओं के नाम; पद्मिनी नाम विद्या की आठों निधियों का वर्णन; राजा उत्तम का अपनी पत्नी को त्यागना, एक ब्राह्मण की स्त्री का खोजाना तथा उसको ढूँढने के लिए ब्राह्मण का राजा से प्रार्थना करना, उसकी स्त्री का मिल जाना; राजा उत्तम का अपनी स्त्री को भी ढूँढने का प्रयत्न करना, एक मुनि से वार्तालाप, राजमहिषी की पुनः प्राप्ति और औत्तम के जन्म की कथा; औत्तम मनवन्तर के देवता, इन्द्र, ऋषि और राजाओं के नाम; इस मन्वन्तर के देवताओं, ऋषियों और राजाओं के नाम, देवी माहात्म्य का आरम्भ, मधुकैटभ बध; महिषासुर की सेना का वध, महिषासुर बध; इन्द्रादिक देवताओं का देवी की स्तुति करना; शुम्भ निशुम्भ का देवी को बुलाने के लिए दूत भेजना, देवी और दूत का संवाद; देवी के न जाने पर शुम्भ-निशुम्भ का अपने सेनापति धूम्रलोचन को देवी से युद्ध करने को भेजना, धूम्रलोचन का बध; चण्ड-मुण्ड बध, रक्तबीज बध; निशुम्भबध; शुम्भबध, सब देवताओं द्वारा देवी की स्तुति; देवी के चरित्र का माहात्म्य तथा देवताओं को वरदान; राजा सुरथ और एक वैश्य का देवी की तपस्या करना और उन दोनों को देवी का वरदान

दक्ष सावर्णि नामक नवें मन्वन्तर से रौच्य नाम तेरहवें मन्वन्तरों के देवताओं, ऋषियों और राजाओं के नाम; रुचि नाम ब्राह्मण को विरक्त देखकर पितरों का उसको गृहस्थ-धर्म का उपदेश देना; रुचि का प्रम्लोचा नाम अप्सरा की पुत्री मालिनी से विवाह करना और उससे रौच्यनामक मनु का उत्पन्न होना; शान्ति मुनि द्वारा अग्नि की स्तुति, भूति मुनि से भौत्य नाम चौदहवें मनु की उत्पत्ति और उस मन्वन्तर के देवताओं, ऋषियों और राजाओं के नाम; सूर्य भगवान की उत्पत्ति तथा उनके स्वरूप का वर्णन; ऋग्, यजु, साम और अथर्ववेद मय सूर्य; ब्रह्माजी द्वारा सूर्य भगवानकी स्तुति; अन्य सृष्टि के साथ देवताओं और राक्षसों की उत्पत्ति, देवताओं और राक्षसों में तुमुल युद्ध, युद्ध में देवताओं की पराजय, सूर्य भगवान का अदिति को वरदान देकर उसके गर्भ से उत्पन्न होना और राक्षसों को पराजित करना; विश्वकर्मा द्वारा सूर्य का तेज कम किया जाना; सूर्य भगवान से अश्विनी कुमारों की और रैवत मनु की उत्पत्ति; सूर्य का माहात्म्य; राजा राज्यवर्धन की आयु-वृद्धि के लिए प्रजाओं द्वारा सूर्य की उपासना, राज्य वर्द्धन एवं उनकी प्रजाओं की आयु का बढ़ जाना, सूर्य का माहात्म्य; सूर्यवंश का अनुक्रम; राजा पृषध्र, राजा नाभाग, राजा सुदेव; भनन्दन-वत्सप्री चरित्र; महाराज खनित्र की कथा; महाराज करन्धम की कथा; अवीक्षित चरित्र; मरुत्त चरित्र; नरिष्यन्त चरित्र; महाराज दम का चरित्र; पुराण की समाप्ति और माहात्म्य ।

॥ समाप्त ॥
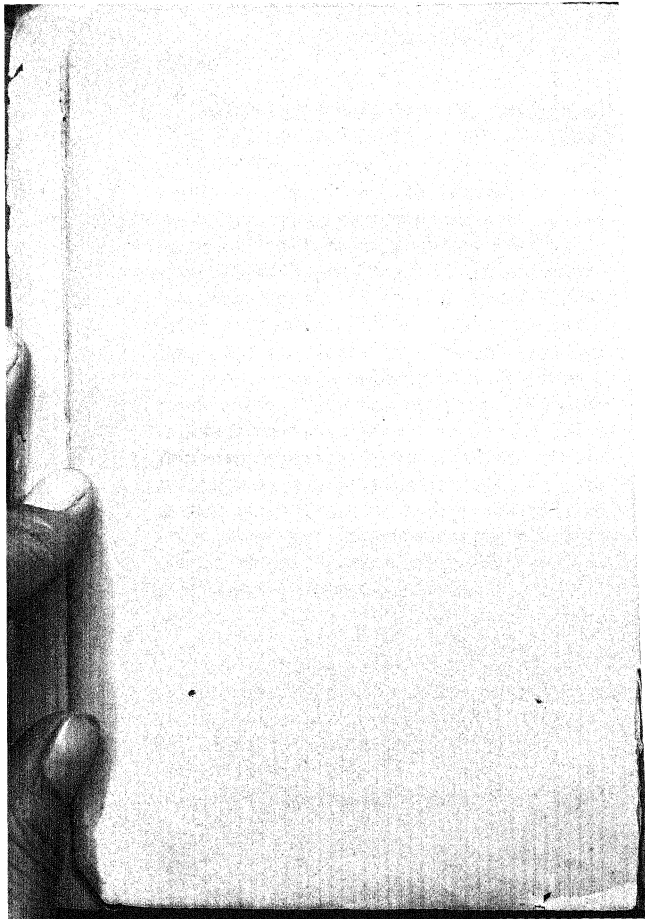
मार्कण्डेय पुराण

अध्याय १

जैमिनि जी का महाभारत की कथा पूछना, अप्सरा का पक्षी होना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

तप और स्वाध्याय में लगे हुए महामुनि मार्कण्डेय जी से व्यास जी के शिष्य जैमिनि ऋषि ने कहा—'भगवान व्यास देव का रचा हुआ महाभारत ग्रंथ सब ग्रंथों में उसी तरह श्रेष्ठ है, जैसे देवगण में विष्णु, शस्त्रों में वज्र, इन्द्रियों में मन। उसमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सभी का वर्णन है और किसी बात में अन्य शास्त्रों से विरोध नहीं है। मैं उसी कथा के तत्वों को आप से जानने के लिए उपस्थित हुआ हूँ।

मार्कण्डेय जी बोले—'यह समय हमारी क्रियाओं के साधन का है। महाभारत की कथा के निमित्त अवकाश की आवश्यकता है। आप परम तत्वज्ञानी पिंगलाक्ष, विबोध, सुपुत्र और सुमुख नामक पक्षियों के पास जाइये। वे चारों पक्षी द्रोण के पुत्र हैं। वे आप के सब संदेहों को दूर कर

देंगे। वे शास्त्रचिन्तक हैं,वेदों के ज्ञाता हैं। वे विन्ध्याचल की कन्दरा में रहते हैं। आप उन्हीं से प्रश्न करें।'

जैमिनि ने आश्चर्य से पूछा—'पक्षि-योनि में उन्हें ऐसा दुर्लभ ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ ? वे द्रोण कौन हैं, जिन के ऐसे तत्वज्ञानी पुत्र उत्पन्न हुए ?'

मार्कण्डेय जी बोले—'एक बार प्राचीन काल में देव-राज इन्द्र नन्दन वन में सुन्दरी अप्सराओं के साथ बैठे मनोरंजन कर रहे थे। संयोग से उसी समय नारद मुनि वहां विचरण करते हुए जा पहुँचे। इन्द्र ने उन का स्वागत किया, उन्हें आदर से अपने आसन पर बैठाला और पूछा कि यदि आज्ञा हो तो अप्सराओं का नृत्य-गान हो। नारद जी ने मुस्कराकर कहा कि बिना रूप-गुण के नृत्य अच्छा नहीं होता, इस कारण जो अप्सरा अपने को सबसे अधिक रूपवती समझती हो वही नृत्य करे। उनकी बात सुन कर अप्सराओं में कहा-सुनी होने लगी। प्रत्येक अप्सरा अपने को रूप-गुण में श्रेष्ठ बतलाने लगी। तब नारद जी ने हँस कर कहा कि ऐसे निर्णय न हो सकेगा, जो अपने रूप-गुण से दुर्वासा जी को मोहित करले वही सबसे श्रेष्ठ मानी जायगी। दुर्वासा जी का नाम सुन कर और सब अप्सराएँ तो काँप गईं, किन्तु वपु नामक अप्सरा अपने रूप-गुण की परीक्षा देने के लिए तैयार हो गई। उसने

कहा कि मैं ब्रह्मा, विष्णु, शिव को भी मोहित कर सकती हूँ। वह दुर्वासा जी के आश्रम में गई और अपने हावभाव तथा रूपगुण पर दुर्वासा जी को मुग्ध कर लिया। कुछ समय बाद दुर्वासा जी को अपने ठगे जाने का ज्ञान हुआ। तब उन्होंने वपु को शाप दिया कि तू १६ वर्ष तक पक्षी की योनि में रह और फिर बाण के कारण शरीर त्याग कर अपने रूप को प्राप्त हो। शाप के कारण वपु को पक्षी की योनि में जन्म लेना पड़ा।'

—:o:—

अध्याय २-३

मार्कण्डेय जी बोले—'सब पक्षियों के राजा गरुड़ अरिष्टनेमि के पुत्र हुये। गरुड़ के पुत्र सम्पाति, सम्पाति के पुत्र सुपार्श्व, सुपार्श्व के पुत्र कुन्ति, कुन्ति के पुत्र प्रलोलुप हुए। प्रलोलुप के कंक और कंधर नामक दो पुत्र हुए। कंक का वास कैलाशशिखर पर था। एक बार कुबेर का सेवक एक राक्षस अपनी स्त्री के साथ पर्वत पर आकर बिहार करने लगा। संयोग से कंक की दृष्टि उस पर पड़ गई। राक्षस ने कंक को बहुत भला-बुरा कहा। बात ही बात में दोनों में घोर युद्ध हुआ और अन्त में राक्षस ने कंक को मार डाला। अपने भाई की मृत्यु से उसके भाई कंधर को बड़ा दुःख हुआ। बदला लेने के लिए कंधर ने राक्षस से

युद्ध किया और अन्त में उसे मार डाला। राक्षस की स्त्री ने अपने पति को मरा हुआ देख, कंधर से कहा कि तुम मुझे न मारो, मैं तुम्हारी पत्नी बन कर रहूंगी। कंधर राजी हो गया। वह स्त्री मेनका अप्सरा की पुत्री थी। वह इच्छानुसार अपना रूप बदल सकती थी। कंधर की प्रसन्नता के लिए उसने पक्षी का रूप बना लिया। उसने कंधर के अंश से तार्क्षी नामक कन्या को जन्म दिया। दुर्वासा जी के शाप के कारण वपु नामक अप्सरा ने ही तार्क्षी के रूप में जन्म लिया था।

'मन्दपाल नामक पक्षी के द्रोण नामक वेदज्ञ, तत्वज्ञ पुत्र से कंधर ने तार्क्षी नामक अपनी कन्या का विवाह कर दिया। यथा समय द्रोण के अंश से तार्क्षी के गर्भ रहा। उसी दशा में संयोग से वह कुरुक्षेत्र की ओर गई। उस समय वहाँ कौरवों-पाण्डवों में घोर युद्ध चल रहा था। कुतूहलवश तार्क्षी उस युद्ध को देखती रही। एक बार अर्जुन का छोड़ा हुआ एक बाण तार्क्षी के शरीर में से होता हुआ निकल गया। वह मर कर पृथ्वी पर गिर पड़ी। दैवयोग से उसके पेट में जो चार अण्डे थे उन्हें बाण से कोई हानि न हुई। तार्क्षी के पृथ्वी पर गिरते ही वे चारों अन्डे उसके पेट से निकल कर एक ओर लुढ़क गये। ठीक उसी समय सुप्रतीक नामक हाथी का घंटा टूट

कर इस प्रकार गिरा कि वे चारों अन्डे उसके अन्दर आगये। इस घटना के बाद बहुत समय तक युद्ध चलता रहा, पर वे चारों अन्डे घंटे के नीचे सुरक्षित बने रहे।

'युद्ध समाप्त होने पर दैव संयोग से शमीक नामक ऋषि अपने शिष्यों के साथ उस ओर आ निकले। उन्होंने रास्ते में पड़ा देख कर उस घंटे को उठाया। उसके नीचे पक्षियों के बच्चों को देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने अपने शिष्यों से कहा कि इन बच्चों को ऐसे विकट युद्ध के बीच में इस प्रकार सुरक्षित देख कर मुझे दैत्य-गुरु शुक्राचार्य की वह बात याद आती है जो उन्होंने देवगण की मार से घबरा कर भागते हुये राक्षसों से कहा था। उन्होंने कहा था—'शूरता और यश को छोड़ कर क्यों भाग कर जा रहे हो? जहाँ जाओगे वहीं मृत्यु तुम्हारे पीछे लगी रहेगी। जब तक आयु शेष रहेगी तब तक युद्ध करते हुये भी नहीं मर सकते। और आयु शेष हो जाने पर विधाता के प्रतिकूल कोई भी जीवित नहीं रह सकता। कोई घर में रह कर भी मर जाता है, कोई भागते समय मरता है, कोई खाते-पीते मरता है,कोई भोगविलास करते समय अनायास मर जाता है, कोई घाव या चोट लगने से मरता है, कोई बिना रोग, बगैर घाव-चोट के ही मर जाता है, कोई अस्त्र शस्त्र के प्रहार से मरता है, कोई-कोई तपस्या करते-क

कोई-कोई योगाभ्यास करते-करते मर जाता है। पूर्व समय में इन्द्र ने शम्बर नामक असुर को वज्रसे मारा था, किन्तु उस समय उसकी आयु पूरी नहीं हुई थी,इस कारण वह न मरा। उसी शम्बर को इन्द्रके उसी वज्र के एक ही आघात ने इस समय अनायास नष्ट कर डाला। बिना मृत्यु आये और समय पूरा हुये कोई भी नहीं मरता। मरने के भय को छोड़ कर अपना कर्तव्य पालन करना चाहिए।' इन बच्चों के इस घोर संग्राम के बीच में भी जीवित रहने से शुक्राचार्य की वे बातें सत्य सिद्ध हुईं। कहाँ अंडों का गिरना, कहाँ घंटे का ठीक उनके ऊपर आकर पड़ना, और कहाँ मांस, रुधिर और रुण्ड-मुण्ड से भरी हुई इस भयावह संग्राम-भूमि में उनका इस प्रकार जीवित बचना! दैव की अनुकूलता संसार में बड़े सौभाग्य को प्रकट करने वाली होती है। (दैवानुकूलता लोके महाभाग्यप्रदर्शिनी।) इन बच्चों को अपने आश्रम में ले चलो और बिल्ली, चूहे, नेवले आदि से बचा कर इनका पालन करो। वैसे तो सभी प्राणी अपने कर्मों के द्वारा सुरक्षित रहते हैं, किन्तु तो भी सभी बातों और कामों में मनुष्य को यत्न करना चाहिए,क्योंकि प्रयत्न करने के बाद फिर कुछ कहने-सुनने को शेष नहीं रह जाता।'

इस प्रकार कह कर शमीक मुनि उन बच्चों को अपने

सुरम्य आश्रम में ले आये और यत्न पूर्वक उन का लालन पालन करने लगे। कुछ समय बाद बच्चे बड़े हुये और उड़कर सूर्यके रथ तक जा पहुंचे। सूर्य देव के प्रभाव से उन्हें अपूर्व शक्ति और ज्ञान की प्राप्ति हुई। वे नद, नदी, समुद्र वन, पर्वत आदि को देखते हुए फिर अपने आश्रम में लौट आये और शमीक ऋषि को प्रणाम कर मनुष्यों की वाणी में शुद्ध-स्पष्ट शब्दों में बोले—'आप ने हमारे प्राण बड़े संकट के समय बचाये हैं। फिर हमें पाल-पोस कर बड़े यत्न से बड़ा किया। आप का हमारें ऊपर बड़ा उपकार है। आज्ञा दीजिये कि हम आप की क्या सेवा करें।'

पक्षियों के बच्चों के इस प्रकार शुद्ध, स्पष्ट, बुद्धि-विवेक-युक्त वचन सुन कर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। ऋषि ने उनसे पूर्व-जन्म का वृतांत और पक्षि-योनि में जन्म लेने का कारण पूछा। बच्चे बोले—'प्राचीन समय में विपुलस्वान नामक महानुभाव के सुकृश और तुम्बुरू नामक दो पुत्र हुए। यथा समय सुकृश के हम लोगों ने जन्म लिया। हमारे पिता बड़े संयमी, तपस्वी, संतोषी, सत्य-निष्ठ, शुचिवान, उदार, आचारवान और जितेन्द्रिय थे। एक बार इन्द्र एक बूढ़े पक्षी के रूप में उनकी परीक्षा लेने के लिए आये। उस पक्षी का शरीर बहुत ही जर्जर था, पंख टूटे हुए थे, अंग शिथिल थे, दशा बहुत ही दयनीय थी। ऋषि के

सम्मुख पहुँच, पक्षी ने गिड़गिड़ा कर कहा—'हे विप्रवर ! मैं आप की शरण में आया हूँ, आप मेरी रक्षा करें। मैं भूख के मारे मर रहा हूँ, आप मुझे जीवन दान दें। मुझे वृद्ध समझ कर पक्षियों के राजा ने विन्ध्याचल पर्वत से नीचे गिरवा दिया। चोट और भूख के कारण मेरे प्राण व्याकुल हैं। आप भोजन देकर मेरे प्राण बचालें।'

ऋषिको दया आ आई। उन्होंने पक्षी से कहा—'तुमको इच्छानुसार भोजन देकर मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा। तुम्हारे लिए कौन-सा आहार दूँ ?'

पक्षी ने गिड़गिड़ा कर कहा—'मैं तो मनुष्य का मांस खाकर ही जी सकता हूँ।'

ऋषि ने उसे बहुत समझाया कि इस बुढ़ापे में तुम मनुष्य के मांस का लोभ छोड़ दो। पर वह किसी दूसरी वस्तु को खाने के लिए तैयार न हो सका। तब हार कर ऋषि ने कहा—'दुष्टों की दुर्भावनाओं की शान्ति कभी नहीं होती। (सर्व्वथा दुष्टभावानां प्रशमो नोपजायते।) मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ, इस कारण मैं तुम्हें मन चाहा आहार दूंगा।' यह कह उन्होंने हम लोगों को बुला कर कहा कि तुम लोगों ने मुझसे जन्म लिया है, इस कारण यदि मुझे पूज्य समझते हो तो जो मैं कहूँ उसे करो। हम लोगों ने नम्रता पूर्वक कहा कि आप जो आज्ञा देंगे हम सहर्ष उसका

पालन करेंगे। ऋषि ने कहा कि तुम लोग अपने नश्वर शरीर को इस पक्षी के हित के लिए देदो, यह तुम्हारे मांस को खाकर अपनी भूख शान्त करेगा और तुम्हारे रक्त को पीकर अपनी प्यास बुझायेगा। ऐसे कठोर वचन सुनकर हम लोग दुःखी होकर बोले—'ऐसा भीषण कार्य तो हम लोगों से न होगा। दूसरे के शरीर को बचाने के लिए बुद्धिमान अपना शरीर क्यों नष्ट करे ? यदि शरीर बना रहेगा तो अपने कल्याण के लिए बहुत-से धर्म के कार्य किये जा सकते हैं। शरीर के न रहने पर धर्म-पुण्य के कार्य कैसे हो सकते हैं ? इसी कारण धर्म के तत्वों को जाननेवाले विद्वानों ने कहा है कि शरीर की सदा सब तरह से रक्षा करनी चाहिए। पुत्र पिता का ऋणी रहता है,किन्तु इसके लिए पिता को अपने पुत्र के शरीर की बलि कदापि न देनी चाहिए। शरीर-रक्षा सबसे बढ़कर धर्म है।'

हमारे ऐसे वचनों को सुनकर ऋषि को क्रोध आ गया। उन्होंने कहा—'तुम लोगों ने पहले मेरी आज्ञा के अनुसार चलने की प्रतिज्ञा की। बाद में फिर अब शरीर के मोह में पड़कर अपने वचनों के अनुसार चलने से इनकार कर रहे हो। सत्य और प्रतिज्ञा-पालन ही सबसे बढ़कर धर्म है। तुम उससे विमुख हुए,इस कारण तुमको पक्षि-योनि में जन्म लेना पड़ेगा। अब मैं अपना शरीर देकर इस पक्षी

की क्षुधा दूर करूँगा और इसके प्राण बचाकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करूँगा।'

यह कह उन्होंने पक्षी से कहा कि तुम मुझे खाकर अपनी भूख शान्त कर लो। ऋषि के त्याग और सत्य से इन्द्र आश्चर्य चकित रह गये। पक्षी का रूप छोड़कर वे अपने असली रूप में प्रकट हुए और बोले—'हे सत्यव्रत, तपोधन! मैं संसार में आपकी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए ही पक्षी का रूप धारण कर आपकी परीक्षा लेने के लिए यहाँ आया था। आप धन्य हैं! ऐसा सत्य और शरीर तक दान कर देने का ऐसा सत्साहस दूसरे किसी में भी नहीं है। आप जो चाहेंगे वह आपको प्राप्त होगा। आपका ज्ञान अखण्ड रहेगा। आपके किसी कार्य में कोई विघ्न न पड़ेगा।'

यह कहकर इन्द्र ऋषि से विदा होकर चले गये। उनके जाने के बाद शाप के भय से काँपते हुए हम लोग बोले—'हे पिता! शरीर के राग में पड़कर हमसे भारी अपराध हो गया है। यह शरीर एक गढ़ के समान है। चेतन पुरुष इसका राजा है। मन और बुद्धि उसके मंत्री के समान हैं। वे दोनों आपस में लड़ा करते हैं। तभी राजा का नाश होता है। काम,क्रोध,लोभ आदि सदा इस गढ़ को नष्ट करने का प्रयत्न करते रहते हैं। राग नामक शत्रु नेत्र रूपी द्वार से प्रवेश करता है। मन उसके साथ मिल जाता है।

तब बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। मन की सहायता पाकर शत्रु इन्द्रिय आदि गढ़ के अन्य साधनों को अपने वश में करके गढ़ को तोड़ने का प्रयत्न करता है। लोभ,क्रोध,मोह आदि उसकी सहायता करते हैं। राग से लोभ होता है,लोभ से क्रोध,क्रोध से सम्मोह,सम्मोह से स्मृति का नाश होता है और स्मृति के नष्ट होते ही बुद्धि नष्ट हो जाती है एवं गढ़ टूट जाता है। यही गति सब प्राणियों की है। हमने राग,लोभ,क्रोध,मोह आदि के कारण भारी अपराध कर डाला,आप हमें क्षमा करें,शाप से छुटकारा दे दें।'

ऋषि ने कहा—'मेरे वचन झूठे नहीं हो सकते। तुम्हें पक्षि-योनि में जन्म तो लेना ही पड़ेगा,किन्तु तुम्हारा ज्ञान नष्ट न होगा। अन्त में तुम्हें परम सिद्धि प्राप्त होगी।'

शमीक ऋषि ने पक्षि-शावकों के मुख से यह व्रतान्त सुनकर उन्हें उपदेश और ज्ञान दिया और फिर विंध्यपर्वत पर जाकर तप करने की आज्ञा दी। वे पक्षी शमीक जी को प्रणाम कर विंध्यपर्वत पर जाकर रहने लगे।'

अध्याय ४

जैमिनि जी का पक्षियों के पास जाकर ज्ञान प्राप्त करना। महाभारत के सम्बन्ध में पाँच शंकाएं और उनके उत्तर; इन्द्र के पाँच रूप, वासुदेव का अवतार, विश्वेदेवों का शाप

मार्कण्डेयजी बोले—'हे जैमिनिजी ! इस प्रकार वे द्रोण

के पुत्र पक्षी हुए। उन्हें सम्पूर्ण ज्ञान है। वे इस समय विन्ध्याचल पर्वत पर रहते हैं। आप वहीं जाकर उनसे ज्ञान प्राप्त कीजिये।'

मार्कण्डेयजी से विदा होकर जैमिनिजी विन्ध्याचल पर गये। वहाँ उन्होंने उन पक्षियों को बहुत शुद्ध-स्पष्ट पाठ करते सुना। उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा कि जब भाई-बन्धु,मित्र-स्वजन आदि सभी छोड़ देते हैं उस समय भी और जन्मान्तर में भी सरस्वती देवी नहीं छोड़तीं। आगे बढ़कर, गुफा के अन्दर जाने पर उन्हें शिला पर बैठे हुए वे पक्षी दिख पड़े। उन्होंने पक्षियों से आदर पूर्वक कहा—'आपका कल्याण हो! मैं व्यासदेव का शिष्य जैमिनि हूँ। दैव की इच्छा बड़ी प्रबल है। आप शाप के कारण इस योनि में आये हैं, इसकी चिन्ता न कीजिये। समय के फेर से तप के क्षीण होने पर उच्चकुल के मनुष्य नीचों के यहाँ शरण लेते हैं,दान देने वाले भीख माँगकर गुजर करते हैं, मारने वाले मार खाते हैं। संसार में सभी परस्पर विरोधी बातें संभव हैं। ज्ञान का फल यही है कि सुख-दुःख दोनों में समान भाव रक्खा जाय।'

पक्षियों ने आदरपूर्वक अर्घ्य-पाद्य देकर जैमिनिजी की पूजा की और उन्हें सुख से उत्तम आसन पर बैठालकर कुशल-क्षेम पूछने के बाद आने का कारण पूछा। जैमिनिजी

बोले—'मुझे महाभारत के कुछ स्थलों पर कुछ शंकाएँ हैं, उन्हीं को पूछने के लिए मैं श्रीमार्कण्डेयजी के पास गया था। उन्होंने आप लोगों के पास भेजा है। आप बतलायें कि (१) जो परमेश्वर निर्गुण, सर्वाधार और सब कारणों का कारण है,वह मनुष्य रूप धारण कर वासुदेव क्यों कहलाया ? (२) द्रुपदराज की पुत्री कृष्णा एक साथ पाँच पाँडवों की भार्या कैसे हुई ? (३) महबलवान बलरामजी ने ब्रह्महत्या के पाप से छूटने के निमित्ति तीर्थयात्रा कैसे की ? (४) द्रौपदी के जो पाँच महारथी,महात्मा,महाबली पुत्र थे, वे कुमारावस्था में (बिना विवाह के ही) कैसे अनाथों की तरह मारे गये ? उनके रक्षक और अभिभावक तो पाँचों पाण्डव थे ? ये ही मेरे प्रश्न हैं। आप कृपाकर इनके उत्तर दें।'

पक्षी बोले—'परमपुरुष,अप्रमेय,शाश्वत, अव्यय विष्णु भगवान को नमस्कार है। वे ही सब देवगण के अधीश्वर हैं। विष्णु भगवान के चार स्वरूप हैं। वे तीनों गुणों के परे भी हैं और त्रिगुणात्मक भी हैं। उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। वे अमर हैं। वे सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और बड़े से भी बड़े हैं। वे जन्म और मरण, दृश्य और अदृश्य से परे हैं,सम्पूर्ण जगत में व्याप्त हैं और जगत के आदि कारण हैं। जल में वास करने के कारण उनका नाम नारा-

यण पड़ा। उनके चार रूप हैं। उनका पहला स्वरूप अनिरु-
द्देश्य है,जो शुक्ल और ज्योति स्वरूप माना जाता है एवं
सर्वव्यापी होने के कारण वासुदेव कहलाता है। यह नारा-
यण की रूप-रंग रहित निर्विकार शुद्धनिष्ठा है, इसे केवल
ममता रहित योगी ही प्राप्त हो सकते हैं। भगवान का
दूसरा रूप शेषनाग है, जो पृथ्वी को अपने मस्तक पर
धारण किए हुए हैं;यह भगवान की तामसी निष्ठा है।
उनका तीसरा रूप सात्वकी है जो प्रजा पालन और धर्म
संस्थापन के कार्यों में रत रहता है। जब-जब धर्म का ह्रास
होता है और अधर्म की वृद्धि होती है तब-तब भगवान
अपनी इसी सात्विकि वृति का आश्रय लेकर अवतार धारण
करते हैं और अधर्म का नाश कर धर्म की स्थापना करते
हैं। भगवान का चौथा स्वरूप रजोगुण और शेषशायी है।
समय-समय पर भगवान ने अपनी सात्वकी वृति का आश्रय
लेकर वराह,नृसिंह,वामन,आदि अनेक अवतार धारण किए
और इस समय भी मथुरा में प्रकट हुए हैं। वासुदेव की
इच्छा के कारण ही देवता,मनुष्य,तिर्यग् आदि योनियाँ
स्वभावानुसार प्राप्त होती हैं। धर्म संस्थापन के लिए ही
विष्णु भगवान अवतार धारण करते हैं।'

पक्षी बोले—'हे जयमिनिजी अब अपने दूसरे प्रश्न का
उत्तर सुनिए। प्राचीनकाल में इन्द्र ने त्वष्टा के पुत्र तेजस्वी

ब्राह्मण को मारा था;इस कारण इन्द्र को घोर ब्रह्महत्या का पाप लगा और उनका तेज निकलकर धर्म में प्रवेश कर गया। इन्द्र निस्तेज हो गए। इधर प्रजापति त्वष्टा ने अपने पुत्र का मरण सुनकर कोप किया और अपनी जटा उखाड़कर अग्नि में फेंक दी। उससे वृत्तासुर नामक एक बड़ा विकराल दानव उत्पन्न हुआ। उसे अजेय जानकर इन्द्र ने सप्तर्षियों को बीच में डालकर संधि कर ली। कुछ समय बाद उचित अवसर देखकर उन्होंने अपने वज्र से वृत्तासुर को मार डाला। उस समय भी इन्द्र को ब्रह्महत्या लगी और उनका तेज निकलकर पवनदेव में प्रविष्ट होगया। एक समय इन्द्र ने गौतम ऋषि को धोखा देकर उनकी पत्नी अहिल्या के साथ विहार किया;उस समय भी उनका तेज उनके शरीर को छोड़कर अश्विनी कुमारों में समा गया। कुछ समय के अनन्तर राक्षसों ने पृथ्वी पर आकर राजाओं के कुलों में जन्म लिया और घोर अत्याचार एवम् प्रजा पीड़न प्रारम्भ किया। अधर्म और अत्याचार के भार से पृथ्वी रसातल को जाने लगी। उसकी पुकार सुनकर देवगण ने भूभार उतारने के लिए निश्चय किया। और वे यथा समय अपने-अपने अंश से प्रकट हुए। इन्द्र का जो तेज धर्मराज में प्रविष्ट हुआ था उससे युधिष्ठिर का, इन्द्र का जो तेज पवनदेव में प्रविष्ट हुआ था उससे भीम

का और उनका जो तेज अश्विनी कुमारों में प्रविष्ठ हुआ था, उससे नकुल और सहदेव का जन्म हुआ था। इन्द्र ने अपने अंश से अर्जुन को उत्पन्न किया। इस प्रकार स्वयम् इन्द्र पाँच पाण्डवों के रूप में प्रकट हुए और अग्नि से उत्पन्न द्रौपदी उनकी पत्नी हुई।'

पक्षी बोले—'जब महाभारत का युद्ध होना निश्चित हो गया तब बलरामजी बड़े धर्म संकट में पड़े। न तो वे अपने शिष्य और कौरवों के राजा दुर्योधन का साथ दे सकते थे और न अपनी बहन सुभद्रा के पति अर्जुन का। अन्त में उन्होंने सब से अलग रहकर तीर्थ यात्रा करने का निश्चय किया। हृष्ट-पुष्ट और सुखी मनुष्यों से भरी हुई द्वारका को छोड़कर वे रैवतक वन में गए और वहाँ मदिरा-पान एवम् रेवती के साथ विहार करने के अनन्तर वे स्त्रियों को लिए हुए उस स्थान पर गए जहाँ कौशिक, भार्गव,भारद्वाज, गौतम आदि के वंशज ऋषिगण सूतजी से उत्तमोत्तम पौराणिक,धार्मिक कथाएँ सुन रहे थे। मदिरा के नशे में चूर बलरामजी को आता हुआ देख ऋषिगण ने उनका स्वागत किया। किन्तु व्यासासन पर बैठे रहने के कारण सूतजी न उठे। इसमें अपमान समझकर मदिरा के नशे के कारण बलरामजी ने सूतजी के प्राण हरण कर लिए। यह देखकर सब ऋषि उस वन को छोड़कर चले

गए। ऋषियों के चले जाने पर बलरामजी को बड़ा पश्चाताप हुआ। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि बारह वर्ष तक भू-प्रदक्षिणा और तीर्थाटन कर मैं इस पाप का प्रायश्चित करूँगा। इसी कारण महाभारत के युद्ध के समय वे विभिन्न तीर्थों में घूमते रहे।'

पक्षी बोले—'पूर्वकाल में राजा हरिश्चन्द्र धर्म पूर्वक राज्य करते थे। उनके राज्य में किसी को किसी प्रकार का दुःख न था; सभी अपने-अपने धर्म-कर्म में लगे हुए सुख पूर्वक काल व्यतीत करते थे। एक बार राजा हरिश्चन्द्र वन में शिकार खेलने गए। वहाँ उन्हें स्त्रियों का विलाप सुन पड़ा; स्त्रियाँ विलाप करती हुई अपनी रक्षा के लिए पुकार रही थीं। राजा यह कहते हुए उनकी ओर गए कि तुम चिन्ता न करो मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा। यथार्थ में वह विश्वामित्रजी का आश्रम था, वे उस स्थान पर सब विद्याओं को वश में करने के लिए घोर तप कर रहे थे। विद्यायें उनके घोर तप से त्रस्त होकर रक्षा के लिए चिल्ला रही थीं। विघ्नराजरौद्र किसी तरह से विश्वामित्रजी के तप में विघ्न डालकर विद्याओं की रक्षा करना चाहते थे। राजा हरिश्चन्द्र को रक्षा के लिए वचन-बद्ध होते हुए देख विघ्नराजरौद्र उनके शरीर में प्रवेश कर गए। राजा ने अपने धनुषबाण को सम्हाल कर कहा कि जो दुष्ट मेरे राज्य में

स्त्रियों को सता रहा है उसे मैं अपने बाणों से अभी छिन्न-भिन्न किए डालता हूँ। राजा के वचन सुनकर विश्वामित्रजी का क्रोध भड़क उठा। वे क्रोध से अन्धे होकर राजा को भला-बुरा कहने लगे। क्रोध करते ही उनके तप में विघ्न पड़ गया और विद्यायें उनके शरीर से निकल कर देवलोक को चली गईं। विश्वामित्र को कुपित देख हरिश्चन्द्र भय के कारण काँपते हुए बोले—'मेरा अपराध क्षमा करें। मैं आपका अपमान नहीं करना चाहता था। मैंने समझा कि कोई दुष्ट अबला स्त्रियों को सता रहा है। धर्मशास्त्र की आज्ञा है कि राजा शस्त्रास्त्र धारण कर प्रजा की रक्षा करे और दान दे।'

विश्वामित्रजी ने क्रोध से लाल होकर कहा—'यदि तुझे धर्मशास्त्र का ज्ञान है तो बतला कि किसके साथ युद्ध करना चाहिए, किसकी रक्षा करनी चाहिए और किसे दान देना चाहिए?'

राजा हरिश्चन्द्र बोले—'विप्रों को और जिनके पास द्रव्य का अभाव हो उन्हें दान देना चाहिए, भयभीत प्राणियों की रक्षा करनी चाहिए और शत्रुओं से युद्ध करना चाहिए।'

राजा के वचन सुनकर विश्वामित्रजी बोले—'यदि तुम राजा हो और राजधर्म को भली भाँति जानते हो तो मुझे

मनचाही दक्षिणा दो क्योंकि मैं विप्र हूँ और दान लेने की इच्छा रखता हूँ।'

राजा ने प्रसन्न होकर कहा--'आप जो भी चाहें, मुझसे माँग लें, मैं आपको सुवर्ण, नगर, राज्य, स्त्री, पुत्र, शरीर, प्राण तक देने के लिए तैयार हूँ।'

विश्वामित्रजी ने राजा से राज्य, सेना, खजाना आदि सब कुछ दान के रूप में ले लिया। जब राजा दान कर चुके तब विश्वामित्र बोले-'अब तुम जिस राज्य को दान में मुझे दे चुके हो, उसी में क्यों ठहरे हुए हो? यहाँ रहना तुम्हें शोभा नहीं देता।' राजा सबसे मुँह मोड़कर अपनी स्त्री शैव्या और राजकुमार रोहित को लेकर वहाँ से चलने लगे। तब विश्वामित्रजी उन्हें रोककर बोले-'तुमने इतना बड़ा दान किया है, जो राजसूय यज्ञ के बराबर है। किन्तु यह तभी सफल माना जायगा जब तुम इसके उपयुक्त दक्षिणा दोगे। बिना दक्षिणा दिये तुम्हारा कल्याण न होगा।'

राजा ने बहुत समझाया कि स्त्री-पुत्र को छोड़कर मेरे पास इस समय कुछ भी नहीं बचा है, पर विश्वामित्रजी न माने। हारकर राजा ने उनसे कहा कि मैं एक महीने में आपको उचित दक्षिणा दूँगा। यह कहकर वे अपने राज्य को छोड़कर जाने लगे। उन्हें जाते देख प्रजा उनके पीछे-

पीछे जाने को तैयार हो गई। छोटे-बड़े, धनी-निर्धन, मूर्ख-विद्वान सभी उनके साथ जाना चाहते थे। राजा ने बहुत समझाया। पर कोई भी उनका साथ छोड़कर उस राज्य में न रहना चाहता था। यह देख विश्वामित्रजी बहुत बिगड़े। राजा को धमका कर तथा रानी को डंडे से मार कर कहा—'दिखलाने के लिए राज्य को दान में दे दिया और अब प्रजा को भड़काकर तुम इसे वापस लेने के लिए यहाँ ठहरे हुए हो।'

बुरी बातें सुनकर और अपनी स्त्री को पिटती हुई देखकर भी राजा हरिश्चन्द्र को क्रोध न आया। वे विनय करते हुए विश्वामित्रजी से यही कहते रहे कि मैं अब जाता हूँ। किन्तु विश्वेदेवों से यह अन्याय सहन न हो सका। उन्होंने प्रकट होकर विश्वामित्रजी से कहा कि आप हरिश्चन्द्र ऐसे सत्यव्रती, दानी, त्यागी और सहनशील राजा को इस प्रकार तंग करके घोर पाप कर रहे हैं। उनके वचन सुनकर विश्वामित्रजी ने उन्हें शाप दिया कि तुम मनुष्य योनि में जन्म लो। विश्वेदेवा इस शाप से बहुत भयभीत एवं दुःखी हुए। वे गिड़गिड़ा कर क्षमा माँगने लगे। विश्वामित्रजी ने शान्त होकर कहा—'तुम्हें मनुष्य की योनि में तो जाना ही पड़ेगा, किन्तु न तो तुम्हारा विवाह होगा और न तुम्हारे कोई सन्तान ही होगी। काम-

क्रोध से मुक्त होकर तुम फिर देवत्व को प्राप्त हो जाओगे।'

पक्षी बोले—'हे जैमिनिजी! वे ही पाँचों विश्वेदेवा पाँडवों के यहाँ द्रौपदी के पाँच पुत्र हुए थे। शाप के कारण उन्हें कुमारावस्था में ही मरना पड़ा।'

—:o:—

अध्याय ८

राजा हरिश्चन्द्र की कथा

जैमिनि जी बोले—'राजा हरिश्चन्द्र की पूरी कथा सुनने की बड़ी लालसा है।'

पक्षी बोले—'विश्वामित्र जी से विदा होकर राजा काशी पुरी को पैदल गये। नगर के द्वार पर पहुँचते ही विश्वामित्र जी वहाँ खड़े देख पड़े। राजा ने उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने कहा कि एक महीना बीत रहा है, अब तुम मेरी दक्षिणा दे दो, इसी में तुम्हारा कल्याण है। राजा ने नम्रता से उत्तर दिया कि अभी एक महीना पूरा होने में आधादिन बाकी है, आपको मैं दक्षिणा दूँगा। विस्वामित्रजी यह कह कर चले गये कि यदि समय रहते दक्षिणा न दोगे तो मैं तुम्हें शाप दूँगा। उनके जाने पर राजा धन के लिए चिन्ता करने लगे। पर उन्हें कोई उपाय न सूझ पड़ा। उन्हें व्याकुल देख उनकी रानी शैव्या बोलीं—'आप चिन्ता छोड़ सत्य का पालन करें। सत्य से बढ़कर दूसरा धर्म नहीं है।

बिना सत्य के यज्ञ, तप, दान, व्रत आदि सभी व्यर्थ हो जाते हैं। सात अश्वमेध और सात राजसूय यज्ञ करने पर भी एकबार असत्य बोलने से उन सब का पुण्य क्षीण हो जाता है। आप मेरे रहते दुःख-क्लेश न उठायें और न सत्य से भ्रष्ट हों। स्त्रियाँ सन्तान के लिए ही होती हैं, मैंने आपको पितृ-ऋण से मुक्त करने के लिए एक पुत्र उत्पन्न कर दिया है। अब आपको मेरी उतनी आवश्यकता नहीं रह गई है। इस कारण अब आप मुझे दक्षिणा के बदले में देकर अपने सत्य की रक्षा कीजिये।'

रानी को बिलख-बिलख कर यह कहते हुए सुनकर राजा का धैर्य छूट गया। वे नाना प्रकार की बातें करते हुए फूट-फूटकर रोने-कलपने लगे। इसी समय उनके पुत्र ने करुणा भरे स्वर में भोजन माँगा। राजा-रानी ने उसे समझाकर शान्त करना चाहा। तब पुत्र बोला—'मेरी जीभ का अगला भाग सूखा जारहा है। भूख से मैं मरा जा रहा हूँ। अब और नहीं सहा जाता।' उसकी बातें सुनकर राजा मूर्छित होकर गिर पड़े। रानी विलाप करने लगीं। इसी समय विश्वामित्र जी वहाँ आये और राजा को मूर्छित देख पानी के छींटे दे-देकर उन्होंने उन्हें सावधान किया। राजा की मूर्छा दूर हुई। उन्होंने आँखे खोलीं, पर विश्वामित्र को सामने देख उन्हें फिर मूर्छा आगई। विश्वामित्र जी ने

फिर उपचार कर उन्हें सावधान किया और कहा-'यदि तुम्हें धर्म का विचार हो तो तुरन्त मेरी दक्षिणा देदो। संसार में सत्य से बढ़कर और कुछ भी नहीं है। सत्य से ही सूर्य प्रकाशित है, सत्य से ही पृथ्वी प्राणियों को धारण किये हुए है, स्वर्ग सत्य में ही प्रतिष्ठित है, सत्य ही पर धर्म स्थित है। तुम सत्य का पालन करो और मेरी दक्षिणा दो, नहीं तो मैं शाप दूँगा।'

यह कह विश्वामित्रजी फिर चले गये। राजा फिर चिन्ता और विलाप करने लगे। अन्त में उन्हों ने रानी के वचन मान लिये और नगर में जाकर चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगे कि मैं अपनी स्त्री को बेंचता हूँ, जो चाहे स्वर्ण देकर उसे अभी खरीद ले। कुछ समय बाद एक वृद्ध ब्राह्मण वहाँ आया। उसने राजा की बातें सुनकर रानी को देखा और स्वर्ण देकर दासी के रूप में उसे खरीद लिया। फिर बाल पकड़ कर उसे खींचकर एक ओर ले जाने लगा। अपनी माता को इस प्रकार जाते देख राजकुमार रोता हुआ उसके पीछे-पीछे दौड़ा। उसे अपने पीछे आते देख ब्राह्मण ने उसे धमकाकर तथा मार कर आने से रोकना चाहा, पर मारखाने पर भी रोहित न रुका। हारकर ब्राह्मण ने कुछ सोना देकर उसे भी खरीद लिया। ब्राह्मण दोनों को लेकर चला गया। राजा स्त्री-पुत्र के वियोग में विलाप करने लगे।

कुछ समय बाद विश्वामित्र जी वहाँ आये। राजा ने वह सोना उनके आगे रख दिया। साने को देखकर विश्वामित्र जी बहुत कुपित हुए और बोले–'क्या इतने बड़े सत-कर्म की इतनी ही दक्षिणा होगी? यदि तुम शाप से बचना चाहते हो तो और दक्षिणा दो।' यह कहकर वे चले गये। राजा और कोई उपाय न देखकर अपने शरीर को बेंचने के लिये तैयार होगये। इसी समय भयंकर रूप वाला एक चाण्डाल मुण्डों की माला पहने हुए वहाँ आया और बोला–'मैं स्वर्ण देकर तुझे खरीदना चाहता हूँ।'

उसके रूप को देखकर हरिश्चन्द्र को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने–'कहा मैं नीच कर्म करने वाले चाण्डाल के हाथ नहीं' बिकना चाहता, मैं चाण्डाल का दास कैसे हो सकता हूँ।' इसी समय विश्वामित्र जी वहाँ आये और बिगड़कर बोले–'जब यह चाण्डाल काफी स्वर्ण देने के लिए तैयार है तब तुम मेरी दक्षिणा देकर अपने सत्य का पालन क्यों नहीं करते?'

हरिश्चन्द्र ने गिड़गिड़ा कर कहा–'सूर्यवंश में उत्पन्न राजा होकर मैं इस चाण्डाल की दासता कैसे स्वीकार कर सकताहूँ। आप स्वयम् मुझे अपना दास बनाकर दक्षिणा पूरी कर लीजिए, मैं आपकी सब तरह से सेवा करूँगा। मैं आपकी किसी भी आज्ञा का उलंघन न करूँगा।'

जब विश्वामित्र जी ने देखा कि राजा किसी तरह भी चाण्डाल का दासत्व स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं, तब उन्होंने कौशल से काम लिया। उन्होंने राजा से कहा कि जब तुम मेरे दास हो चुके और मेरी हरएक आज्ञा के पालन करने की प्रतिज्ञा कर चुके हो तो मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि तुम इस चाण्डाल से सोना लेकर मुझे दे दो और इसके साथ जाकर इसकी सेवा करो। लाचार होकर राजा को चाण्डाल के हाथ बिक जाना पड़ा। चाण्डाल से स्वर्ण लेकर विश्वामित्रजी चले गए। चाण्डाल ने राजा को बाँध लिया और वह डण्डे मारता हुआ अपने स्थान पर लेगया। राजा बहुत दुःखी हुए। चाण्डाल ने उन्हें आज्ञा दी कि तुम मेरी ओर से श्मशान में रहकर मुर्दों के ऊपर कर वसूल किया करो। उसमें से छठा हिस्सा राजा के खजाने में जायगा, तीन हिस्से मैं लूँगा और बाकी दो हिस्से में तुम्हें अपना निर्वाह करना होगा। चाण्डाल की आज्ञा पाकर हरिश्चन्द्र को उस घृणित स्थान में रहना पड़ा। वे चिथड़े पहनकर चिता की भस्म से सने हुए किसी तरह कष्ट पूर्वक समय बिताने लगे। श्मशान में रहते-रहते उन्हें बारह महीने व्यतीत हो गये। एक बार स्वप्न में उन्होंने अपने को डोम-डोमिनी के गर्भ से उत्पन्न होते हुए देखा। फिर देखा कि वे डोम बालक के रूप में श्मशान

में कार्य कर रहे हैं और एक समय कुछ ब्राह्मणों के साथ आकर विश्वामित्र की-सी आकृति वाले एक मनुष्य उन्हें शाप दिया कि तू घोर नरक में जा। शाप सुनते ही राजा ने देखा कि यम के दूत उनके जीव को डोम बालक के शरीर से निकालकर नरक में ले गए। वहाँ उन्हें जलते हुए तेल के कुण्ड में डालकर खूब कष्ट दिया गया। फिर उन्हें तीक्ष्ण अस्त्रों से काटा गया और पीप, रुधिर आदि का भोजन देकर नाना प्रकार की नारकीय यातनायें दी गईं। इस प्रकार सौ वर्ष तक नरक की यातनाएँ भोगने के बाद उनको क्रमशः शूकर, कुत्ता, गधा, हाथी, बन्दर, बकरा, बिडाल, कौआ, कीट, मछली, कछुआ, मुर्गा, तोता, मैना, सर्प, वृक्ष आदि की योनि में सौ वर्ष घूमना पड़ा। इसके बाद उनका जन्म सूर्य वंश में हुआ। वहाँ राज्य, स्त्री-पुत्र आदि को जुए में हारकर वन में जाना पड़ा और वन में उन्हें एक सिंह ने खा लिया। अनन्तर विश्वामित्र के कहने से यमदूत नाग-पाश में बाँधकर यमराज के पास ले गए। वहाँ बारह वर्ष तक यातनायें भोगने के अनन्तर यमदूतों ने उन्हें पृथ्वी पर फेंक दिया। पृथ्वी पर गिरते समय भय से उनकी आँखें खुल गईं। राजा आँखें मलते हुए उठ बैठे। ऐसा विचित्र स्वप्न देखने के कारण उनका हृदय जोर-जोर से धड़क रहा था। उन्होंने डोमों के पास जाकर

अपने विचित्र स्वप्न का हाल बतलाया। वे तरह-तरह की बातें करने लगे। कुछ समय बाद सर्प के काटने से कुमार रोहित की मृत्यु हो गई। रानी रोती-कलपती उसे श्मशान में लेकर आई। परिश्रम, क्लेश और चिन्ता के कारण उन लोगों की आकृति इतनी बदल गई थी कि न तो रानी राजा को पहचान सकीं और न राजा ही रानी को। राजा ने आकर उससे मृतक जलाने के लिए कर मांगा। रानी ने कहा मेरे पास कर देने के लिए कुछ भी नहीं है। यह कहकर वह अपनी पहली बातों को एवं अपने पर पड़ने वाले क्लेशों और संकटों का वर्णन करती हुई विलाप करने लगी। उन बातों को सुनकर तथा रोहित के राजसी चिन्हों को देखकर राजा ने रानी को पहचाना और राजा की आवाज सुनकर रानी ने उन्हें जाना। दोनों एक दूसरे को देखकर खूब रोये। रानी ने विलाप करते हुए उनसे श्मशान में रहने का कारण पूछा। राजा ने सब हाल बतला कर कहा'—तुम अपने ब्राह्मण मालिक की आज्ञा न टालना, न काम करने में किसी प्रकार की त्रुटि ही करना। मैं तो चाण्डाल का खरीदा हुआ दास हूँ। मैं यदि इस समय पुत्र रोहित को बिना कर लिये जलाने देता हूँ तो मुझे उस जन्म में फिर चाण्डाल का जन्म लेकर श्मशान में इसी घोर कर्म को करना पड़ेगा। इस कारण मैं तो अग्नि में

प्रवेश कर अपना यह शरीर छोड़ देता हूँ ।' यह कह, तथा रोहित के शव को गले से लगाकर खूब विलाप करने के बाद राजा मरने के लिए तैयार हो गये । रानी भी उनके साथ सती होने का उपक्रम करने लगीं । राजा ने चिता बनाकर रोहित के शव को उस पर रक्खा, फिर सब देवगण को नमस्कार कर उस पर चढ़ने लगे । इसी समय ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, विश्वेदेवा, यम, वरुण आदि सभी देवगण वहाँ प्रकट हो गये । धर्मराज ने राजा को ऐसे घोर कर्म से रोका । इन्द्र ने अमृत के द्वारा रोहित को फिर जीवित कर दिया और राजा से रानी सहित स्वर्ग चलने के लिए कहा । राजा ने सबको प्रणामकर कहा कि मेरा स्वामी तो चाण्डाल है, मैं उसकी आज्ञा के बिना अकेला स्वर्ग कैसे जाऊँ । धर्मराज ने हँसकर कहा कि तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए और संसार में तुम्हारी कीर्ति फैलाने के लिए ही मैंने चाण्डाल का रूप धारणकर तुम्हें श्मशान में रक्खा था । अब मैं तुम्हें दासता से मुक्त करता हूँ ।

राजा ने प्रसन्न होकर फिर सब देवगण को नमस्कार किया । फिर विनय की कि अयोध्या की प्रजा के धन से ही मैंने शुभकर्म किये हैं, मैं उनका सेवक और ऋणी हूँ । उनके बिना मैं अकेला स्वर्ग नहीं जा सकता । इन्द्र ने बहुत समझाया कि सब प्रजा स्वर्ग नहीं जा सकती, सबको

अपने कर्मों के अनुसार अलग-अलग फल भोगना पड़ता है। पर राजा अपनी बात पर अटल रहे। हारकर देवगण ने अयोध्या की सब प्रजा को स्वर्ग जाने की अनुमति दे दी। विश्वामित्रजी ने राजा से क्षमा माँगी और उनका राज्य उन्हें वापस दे दिया। देवगण के कहने से राजा ने अपने पुत्र रोहिताश्व को अयोध्या के सिंहासन पर बैठाल दिया। फिर सब प्रजा को लेकर वे दिव्य विमानों पर सवार हो स्वर्ग को चले गये। दैत्य-गुरु शुक्राचार्य ने उनके तेज को देखकर कहा कि सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र का दान, उनकी सहनशक्ति, उनका शील, विवेक और तप विचित्र हैं। उनके समान कोई पुण्यवान नहीं है।'

अध्याय ६

आडी-बक युद्ध, वशिष्ठ-विश्वामित्र पक्षी

पक्षी बोले—'महर्षि वशिष्ठ राजा हरिश्चन्द्र के पुरोहित थे। जिस समय विश्वामित्रजी ने छलकर राजा हरिश्चन्द्र जी से उनका राज्य लिया और उन्हें चाण्डाल के हाथ बेचा उस समय वशिष्ठजी बारह वर्ष का व्रत लेकर गंगाजल में तप कर रहे थे। तप की अवधि समाप्त होने पर जब वे बाहर निकले तब उन्हें विश्वामित्रजी के छल और राजा हरिश्चन्द्रजी के घोर संकटों की सूचना मिली। अपने

शिष्य, राजा हरिश्चन्द्र की दीन दशा और असह्य क्लेशों का उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने सन्तप्तभाव से कहा 'हे विश्वामित्र! तुम बहुत ही नीच प्रकृति के हो। तुमने पूर्वकाल में मेरे सौ पुत्रों का वध किया था और मुझे अनेक प्रकार से कष्ट दिया था, किन्तु मुझे उस समय उनसे वैसा क्रोध और सन्ताप नहीं हुआ था जैसा कि इस समय धर्मात्मा, प्रजापालक, सत्यवादी, देव-ब्राह्मण-पूजक, क्षमा-शील, परोपकारी, दानी, निष्पाप, निरभिमानी राजा हरिश्चन्द्र के राज्य-भ्रष्ट होने और स्त्री-पुत्र सहित नीच कर्म करने के लिए विवश किये जाने पर हुआ। तुम्हारा यह घोर कर्म मैं सहन नहीं कर सकता इस कारण मैं तुम्हें श्राप देता हूँ कि तुम बगुले की योनि को प्राप्त हो जाओ।'

वशिष्ठजी के घोर शाप को सुनकर विश्वामित्र जी ने भी क्रोध कर शाप दिया कि हे वशिष्ठ! तुम सारस हो जाओ। श्राप के कारण विश्वामित्र जी को अपना शरीर छोड़कर बगुला होना पड़ा और वशिष्ठ जी को सारस। पक्षी होने पर भी दोनों महर्षियों के हृदय से वैर-भाव और क्रोध दूर न हुआ। वे एक दूसरे को मारने के लिए घोर प्रहार करते हुए भीषण युद्ध करने लगे। उनके भीषण युद्ध से बड़ा लोक-क्षय होने लगा, पृथ्वी काँपती हुई रसातल को जाने लगी। सभी प्राणी त्राहि-त्राहि पुकारने लगे। संसार को

इस प्रकार संकट में देख ब्रह्माजी देवगण को लेकर उस स्थान पर गये जहाँ दोनों महर्षि युद्ध में रत थे। ब्रह्मा जी ने दोनों के बीच में खड़े हो कर उन्हें अनेक प्रकार से समझाकर शान्त किया, अपने प्रभाव से शाप का दूर कर उन्हें फिर पहले का रूप दिया और यह कहते हुए उन्हें आपस में मिलाया कि ब्राह्मण का सब से बड़ा बल तप, क्षमा और शान्ति ही है; विश्वामित्र जी ने तो राजा हरिश्चन्द्र का उपकार ही किया है, क्योंकि उन्हीं की प्रेरणा से उनके पापों का क्षय हुआ, उनका यश पृथ्वी पर अचल रूप से फैल गया और उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति हुई। ब्रह्माजी के समझाने से दोनों महर्षियों ने बैर भाव छोड़कर मेल कर लिया। वे अपने घोर कर्मों को सोचकर बहुत लज्जित हुए। ब्रह्माजी ने उन्हें समझाकर शान्त किया। सब अपने-अपने स्थान पर चले गये। इतिहास में यही आडी-बक युद्ध के नाम से प्रख्यात है।'

—:o:—

अध्याय १०-११

पिता-पुत्र सम्वाद, वेद का धर्म धर्म नहीं,
कर्मों के अनुसार जन्म, सुख, दुःख,

जैमिनिजी बोले—'कृपा कर बतलायें कि यह जीव किस प्रकार जन्म लेता है, कर्मके फल किस प्रकार भोगने पड़ते हैं?'

पक्षी बोले—'आपने बड़े कठिन प्रश्न किये हैं। पूर्वकाल में इसी प्रकार के प्रश्न एक ब्राह्मण ने अपने सुमति नामक पुत्र से किये थे। उन्होंने जो उत्तर दिये थे, मैं आपसे उन्हीं को सुनाता हूँ। प्राचीन समय में एक भृगु-वंशी कर्मनिष्ठ ब्राह्मण था। उसने सुमति नामक अपने पुत्र का यज्ञोपवीत संस्कार कराया। फिर पुत्र को उपदेश दिया कि तुम विधि पूर्वक वेदों का अध्ययन करो, फिर विवाह कर गृहस्थाश्रम में सुख भोगो, इसके बाद पुत्र उत्पन्न कर वान-प्रस्थ आश्रम में जाना और अन्त में सब से मोह-ममता छोड़ कर संन्यास ग्रहण करना एवं ब्रह्म में लीन होजाना। अनेक बार पिता ने पुत्र को समझाया, पर उसने कुछ ध्यान न दिया। तब पिता बहुत दुखित हुआ। पिता को दुःखी देख पुत्र बोला—'हे पिता! आप चिन्ता न करें। मैंने वेद, शास्त्र, शिल्प कला, आदि का विधि पूर्वक अध्ययन किया है। मेरे हजारों जन्म हो चुके हैं और उन सब का मुझे स्मरण है। मैंने जो-जो दुःख भोगे, जो-जो सुख पाये, उन सबका मुझे स्मरण है। कभी मैं राजा हुआ, कभी कैदी, कभी धनी, कभी कंगाल, कभी विद्वान, कभी मूर्ख, कभी सुन्दर हृष्ट-पुष्ट, कभी कुरूप-क्षीण, कभी गुणी, कभी गुण-हीन। मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट,पतंग आदि नाना योनियों में घूमना पड़ा और हर्ष-विषाद, संयोग-वियोग,

भाव-अभाव, संतोष-अशान्ति, दुःख-सुख आदि का अनुभव करना पड़ा। अन्त में मुझे वह ज्ञान प्राप्त हुआ जिसके द्वारा मोक्ष प्राप्त होता है। अब मैं उसी के बल पर पर-ब्रह्मपद को प्राप्त करूँगा। वेदों, शास्त्रों के अध्ययन से मुझे वह शान्ति न मिल सकी थी जो इस ज्ञान के प्राप्त होने पर मिल रही है, इस कारण वेदों में वर्णित क्रिया-कलाप से अब मेरा संतोष नहीं होता। इस ज्ञान के कारण मुझे पूर्ण तृप्ति प्राप्त हुई है, मैं निरभिमान होगया हूँ और मुझे पूर्ण आत्मज्ञान होगया है, इस कारण मुझे वेद-शास्त्र से अब कोई प्रयोजन नहीं है। वेदों में वर्णित धर्म अब मेरे लिए धर्म नहीं है, क्योंकि मैं अब जीवन-मुक्त हो चुका हूँ।'

पिता ने आश्चर्य से पूछा—'तुम्हें तो हम लोग महा-मूर्ख मानते थे, किन्तु तुम्हारी बातों से विदित होता है कि तुम सब से अधिक ज्ञानी हो। यह तुम्हारा छिपा हुआ ज्ञान इस समय किस प्रकार प्रकट हुआ? तुम अपने पूर्व जन्मों का वृत्तान्त मुझे बताओ।'

पुत्र बोला—'बहुत समय पहले मैंने एक ब्राह्मण कुल में जन्म लिया था। उस जन्म में पूर्व संस्कारों के कारण आत्म-ज्ञान को प्राप्त कर सका था। बराबर योगाभ्यास, सत्संग और विचार-शोधन के कारण मैं परमनिष्ठा को प्राप्त हो

गया, एवम् निरन्तर परमात्मा में लीन रहने लगा। कुछ समय बाद अनेक विद्वान आकर अपनी-अपनी शंकाओं को मेरे उपदेशों के कारण दूर करने लगे। इस प्रकार मैं उनका आचार्य बन गया। किन्तु अभिमान के कारण धीरे धीरे मेरा वह सात्विक भाव दूर होगया, मेरा ज्ञान शनैः शनैः नष्ट होगया, मैं मोह से घिर गया। उसी मोह की स्थिति में मेरी मृत्यु हुई, इस कारण मुझे फिर जन्म-मरण के बन्धन में फँसना पड़ा। किन्तु इस जन्म में मुझे फिर दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ है। मुझे अपने पूर्व जन्मों का स्मरण हो आया है। अब मैं इन्द्रियों को जीत कर इस प्रकार जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ जिससे मैं फिर मोह और अज्ञान में न फँसूँ। मैंने पूर्व जन्म में ज्ञान का दान किया था इस कारण मुझे इस जन्म में सभी जन्मों का स्मरण है और मोक्ष प्राप्त करने के साधन उपलब्ध हैं। अब मैं एकान्तवास कर मोक्ष प्राप्त करने का प्रयत्न करूँगा। आप मुझे विवाहादि के बन्धन में डालकर सत् पथ से विचलित न कीजिए। आपको जो कुछ शंकायें हों उन्हें मैं दूर कर आप के ऋण से मुक्त होना चाहता हूँ।'

पिता ने संसार की स्थिति, जीव के जन्म लेने और नाना योनियों में भ्रमण करने, कर्मों के अनुसार नाना प्रकार के भोगों आदि के सम्बन्ध में पूछा। पुत्र ने कहा-

'यह संसार चक्र बड़ा विचित्र है। मनुष्य का शरीर विभिन्न वायुओं द्वारा संचालित होता है। दान, धर्म, दया, परोपकार, के द्वारा ही जीव सुख और शान्ति प्राप्त कर सकता है। उत्तम कर्म करने वाले को शरीर छोड़ते समय कष्ट नहीं होता और परलोक में भी उसे सब प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं। पाप कर्म करनेवाला दुष्ट प्राणी शरीर छोड़ते समय बड़ा कष्ट पाता है। यमदूत कठिन पाशों में बाँधकर बड़े ही विकट मार्ग से उसे यमलोक में ले जाते हैं। वहाँ यमराज उसके कर्मों के अनुसार उसे रौरव आदि घोर नरकों में यातनाएँ भोगने के लिए डाल देते हैं। नाना प्रकार के नरकों की भीषण यातनाएँ भोगने के अनन्तर वह बहुत समय बाद कृमि, कीट, पतंग, पशु, पक्षी आदि की योनियों में दुःख भोगता हुआ घूमता है। फिर किसी प्रकार कुरूप,अंग हीन, नीच वर्ण की योनि में जन्म पाता है। इस प्रकार नाना प्रकार के कष्टों को भोगने के अनन्तर जब उसके पापों का भोग पूरा हो जाता है तब उसे उत्तम वर्ण की मनुष्य योनि प्राप्त होती है। यदि इसी योनि में वह सत्कर्मों द्वारा अपने को सुधार लेता है तो उसे सद्गति प्राप्त होती है। पुण्यात्मा के मरने पर देवदूत उसे दिव्य विमानों में बैठालकर स्वर्ग को ले जाते हैं। उनके आगे-आगे अप्सरायें नृत्य करती जाती हैं और

गन्धर्व गाते जाते हैं। स्वर्ग में नाना प्रकार के सुखों को भोग करने के बाद वे फिर पृथ्वी पर किसी उत्तम कुल में जन्म लेते हैं। माता के गर्भ में पहले बुलबुला, फिर पिण्ड बनता है। यथा समय उस पिण्ड से पाँच अंग और आँख आदि उपांग प्रकट होते हैं। फिर त्वचा,रोम आदि उत्पन्न होते हैं। गर्भ में प्राणी सिकुड़ा हुआ बड़े कष्ट से रहता है। माता के खाये हुए आहार से ही उसकी पुष्टि होती है। मल-मूत्र और अग्नि के कारण उसे बड़ी यातना भोगनी पड़ती है। यथा समय प्राणी बड़े कष्ट से माता के गर्भ से किसी तरह बाहर आता है। बाहर आने पर उसे मोह और अज्ञान घेर लेता है। बड़े होने पर वह संसारी बातों में फँस जाता है और अच्छे बुरे कर्म करता हुआ शक्तिहीन और वृद्ध हो जाता है। वृद्धावस्था में उसको बहुत कष्ट उठाने पड़ते हैं,किन्तु मोह और अज्ञान के कारण उसे माया से छुटकारा नहीं मिलता। इस प्रकार वह अपने कर्मों के कारण जन्म-मरण के चक्र में घूमता रहता है। गर्भ में तो दुःख होता ही है, बाल्यावस्था में उसे दूसरों के भरोसे रहने के कारण दुःख उठाना पड़ता है, जवानी में ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध आदि के कारण उसे सदा चिन्तित और दुःखी रहना पड़ता है, वृद्धावस्था में इन्द्रियों के शिथिल हो जाने और स्त्री-पुत्रों की उपेक्षा के कारण उसे

भारी क्लेश सहना पड़ता है, इस प्रकार प्राणी को जन्म लेने पर दुःख ही दुःख भोगना पड़ता है। ऐसी दशा में मैं वेद-शास्त्रों के अनुसार चलकर क्यों दुःख का भागी बनूँ, मैं क्यों न मोक्ष प्राप्ति में लगूँ।'

अध्याय १२

नारकों का वर्णन

पिता ने नरकों का वर्णन पूछा। सुमति नामक पुत्र बोले—'नरक अनेक हैं। प्रत्येक में पापियों को भिन्न प्रकार की यातनाएँ दी जाती हैं। रौरव नरक का विस्तार दो हज़ार योजन है और उसकी सारी भूमि अंगारों से भरी हुई है। महा रौरव नरक का विस्तार बारह हजार योजन है और उसमें अग्नि की भीषण ज्वालाएँ उठती रहती हैं। तम नामक नरक अन्धकार और शीत से परिपूर्ण है और वहाँ वर्फ के पहाड़ उड़-उड़ कर पापियों के अंगों को चूर चूर करते रहते हैं। निकृन्तन नामक नरक में पापियों का शरीर घूमता और तिल-तिल करके कटता रहता है। अप्रतिष्ठ नामक नरक में पापी घटी-यंत्र पर बैठालकर घुमाया जाता है और उसका शरीर छेदा और काटा जाता है। असिपत्र नामक नरक में तलवार की तरह तेज पत्ते हैं

और नीचे से अग्नि की ज्वालाएँ उठती रहती हैं एवम् ऊपर से सूर्य की प्रचण्ड किरणें जलाती रहती हैं। शिकारी कुत्ते, भेड़िये आदि भयंकर जीव उसके मांस को नोच-नोचकर खाते हैं। प्यास के मारे उसका तालू सूख जाता है। तप्तकुम्भ नामक नरक अग्नि की ज्वालाओं, उबलते तेल और गरम बालू से पूर्ण है। वहाँ पापियों को भूना, जलाया जाता है। गिद्ध, कौवे आदि उसकी आँखों, अँत-ड़ियों को नोंच-नोंचकर खाते हैं। पापियों को उबलते हुए तेल के कड़ाहों में डाल दिया जाता है। इस प्रकार घोर कर्म करने वाले प्राणियों को भीषण नरकों की यातनाएँ भोगनी पड़ती है।'

अध्याय १३-१५

वैश्य-यमपुरुष सम्वाद; किस कर्म का क्या फल भोगना पड़ता है

पुत्र ने कहा—'इस जन्म से पहले सातवें जन्म में मैं एक वैश्य कुल में उत्पन्न हुआ था। उस जन्म में मैं ने एक निरीह गौ को सताया था, इस कारण मुझे सौ वर्ष तक घोर नरकों की अवन्य यातनाएँ सहन करनी पड़ीं। इस बीच में सहसा मेरी सब यातनाएँ दूर हो गईं और मुझे स्वर्ग सुख का अनु-भव होने लगा। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। बाद में मुझे

विदित हुआ कि एक महात्मा पुरुष के उस ओर आने से ही ऐसा हुआ है। एक भयंकर यमदूत एक दिव्य पुरुष को मार्ग बतलाता हुआ उस ओर से ले जा रहा था। नरकों में पड़े हुए आर्त प्राणियों की घोर यातनाएँ देख, उन महात्मा ने यमदूत से कहा—'मैं क्यों इस घोर स्थान पर लाया गया? जनक के कुल में मैं विपश्चित्ति के नाम से प्रकट था। मैंने तो सदा उत्तम कर्म, परोपकार, सदाचरण, आदि में ही अपना सारा समय व्यतीत किया है। मैंने कभी किसी को कष्ट नहीं दिया, मन में भी पाप कर्म का स्मरण नहीं किया। मैं सदा देव, पितर, सत्पुरुषों की पूजा-सेवा में लगा रहा, निरंतर दीन-दुःखियों की सेवा-सहायता ही करता रहा। फिर क्यों मुझे नरक आना पड़ा?'

यमदूत बोला—'इस में सन्देह नहीं कि आप ने सदा पुण्य-कार्यों में ही समय व्यतीत किया है, किन्तु प्रमादवश आप से एक अनुचित कार्य हो गया था। विदर्भराज-कन्या आप की रानी पीवरी एक बार ऋतुमती हुई किन्तु आपने उसे त्याग कर रूप के मोह के कारण केकय-राजपुत्री अपनी अन्य रानी सुशोभना के साथ विहार किया। ऋतु काल में पितर गण पत्नी में उसी प्रकार विहार चाहते हैं जिस प्रकार यज्ञ की प्रज्वलित अग्नि में देवगण आहुति की कांक्षा करते हैं। ऋतुमती पत्नी को संतुष्ट न करने से ही आप को

इस घोर नरक के चक्र में फंसना पड़ा। अब आप अपने अनन्त शुभ-कर्मों को भोगने के लिए स्वर्ग में चलिये।'

राजा विपश्चित्ति ने पूछा कि इन विभिन्न नरकों में पड़े हुए ये प्राणी जो घोर यातनाएं सहन कर रहे हैं इस का क्या कारण है? यमदूत ने कहा—'मनुष्य को सभी शुभ-अशुभ कर्मों के फल भोगने पड़ते हैं। कोई भी कर्म बिना भोगे नहीं कटता। पाप और पुण्य भोगने से ही कटते हैं। कर्मों के अनुसार ही जीव को नाना प्रकार की योनियों में जन्म लेना पड़ता है और भांति-भाँति के भोग भोगने पड़ते हैं। जिस प्रकार वृक्ष का बीज जल और पृथ्वी के अनुसार छोटा-बड़ा वृक्ष उत्पन्न करने में समर्थ होता है, उसी प्रकार देश, काल, पात्र, कर्म के अनुसार एक ही कर्म छोटे-बड़े फल का कारण होता है। अर्थात एक ही कार्य एक स्थान, समय पर कम फल देने वाला होता है और ठीक वही कर्म दूसरे स्थान और समय पर कहीं अधिक फल प्राप्त कराता है। कभी थोड़े-से पाप कर्म से महान यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं और किंचित मात्र पुण्य के प्रभाव से अक्षय स्वर्ग-सुख प्राप्त हो जाते हैं। जान-अनजान में किये गये अनेक जन्मों के पाप-पुण्य आत्मा के साथ संबधित रहते हैं। वे धीरे-धीरे भोगने से ही शनैः-शनैः छूटते हैं। अपने-अपने कर्मों के शुभ-अशुभ फलों के अनुसार मनुष्य को स्वर्ग-नरक में

जन्म लेना पड़ता है। जो मनुष्य दूसरों की स्त्रियों और धन को हरण करते हैं उनकी आँखें नरक में गिद्ध नोंचते हैं। जो झूठ बोलते हैं, वेद-शास्त्रों के उलटे अर्थ बतलाते हैं, गुरुजनों की निन्दा करते हैं, चुगली करते हैं नरक में उनकी जीभ बार-बार काटी, नोंची और जलाई जाती है। जो दूसरों को संताप देते हैं उन्हें तप्त बालू और अग्नि की लपटों में जलना पड़ता है। जो अपने माता-पिता तथा आश्रित स्वजनों अथवा असमर्थ जन को भूखा रखकर आप पेट भर भोजन करते हैं, उन्हें नरक में या तो मलमूत्र-पीव आदि से अपनी भूख शान्त करनी पड़ती है, या अन्न के बिना तड़पना पड़ता है। जो अपने जिस अंग से व्यर्थ में दूसरों को कष्ट देते हैं, नरक में उन्हीं अंगों को काटा, जलाया, छेदा और नोंचा जाता है। लोभ में पड़कर जो अपने पुत्र, कन्या, स्त्री, माता, पिता, आश्रितजन को त्याग देते हैं, नरक में यमदूत उन्हें उन्हीं का माँस काट कर खाने को देते हैं। दिन में स्त्री से विहार करने और दूसरों की स्त्रियों को भ्रष्ट करने वालों को नाना प्रकार की घोर यातनाएँ सहनी पड़ती हैं, उन के अंग प्रत्यंग जलाये, काटे, नोंचे, छेदे जाते हैं, उन्हें बिना अन्न-जल के तड़पना पड़ता है। जो पतित का दान लेते हैं उन्हें ऊपर से गिरना और पत्थर के अन्दर कीड़ा होना पड़ता है। जो उप-

कार करने वाले के साथ कृतघ्नता करते हैं, उन्हें अंधे, बहरे, गूंगे, होकर भूख प्यास के कष्ट भोगने पड़ते हैं और ज्वालाओं में जलना पड़ता है। जो ब्राह्मण श्राद्ध के अन्न पर और दूसरों की भिक्षा पर अपनी जीविका चलाते हैं, उनके अंगों में घोर सर्पों के विष का प्रवेश कराया जाता है। सोने की चोरी, गुरुपत्नीगमन एवं मदिरा पान करने वाले सदा जलाये जाते हैं और उनके अंग-अंग काटे-छेदे जाते हैं। इस प्रकार घोर नरकों की यातनाओं को भोगने के बाद इन पापियों को नरक से निकलने पर जिस-जिस योनि में जाना पड़ता है उनका सब वर्णन सुनिये। जो विप्र पतित से दान लेता है, वह गधे की योनि में और जो पतित को यज्ञ कराता है वह कीटि की योनि में जाता है। दूसरों का निरादर करने वाला कुत्ता होता है, पिता का अपमान करने वाला और दूसरों की स्त्रियों को चाहने वाला गदहा होता है। पति का अपमान करने वाली स्त्री वानर की योनि पाती है। पर, निन्दा करने वाला राक्षस होता है। स्त्री और बालक को मारने वाला कीड़े-मकोड़े की योनि में जन्म लेता है। अन्न चुरानेवाला चूहा, या बिल्ली; मांस चुराने वाला कौआ या बाज; दूध, दही, नमक चुराने वाला कीड़ा, बिच्छू, बगुला; मधु चुराने वाला मक्खी; मीठा चुराने वाला चींटी; शाक और वस्त्र चुराने वाला पक्षी; सुगंधित

वस्तुओं को चुराने वाला छछूँदर; फल चुराने वाला घुन का कीड़ा; सवारी चुराने वाला लंगड़ा; भूमि, स्वर्ण, गौ आदि हरण करने वाला भीषण आकृतिवाला; दूसरे की स्त्री को रखने वाला नपुंसक; बिना समिधा के हवन करने वाला अजीर्ण का रोगी होता है। जिसकी आकृति, आचरण स्वभाव, व्यवहार दूषित, जघन्य और भीषण हों उन्हें नरक से लौटे हुए पापी समझना चाहिए। और जो सुन्दर, स्वस्थ, अच्छे स्वभाव के, गुणी, विद्वान, नम्र, परोपकार रत, पुण्यशील हों वे स्वर्ग से आये हुये होते हैं।'

यह कह कर यमदूत ने राजा विपश्चित्त को स्वर्ग में चलने के लिए कहा। तब नरकवासियों ने प्रार्थना की—'हे महाप्रभो! आप थोड़ी देर और यहाँ रुकें, कारण कि आपके संसर्ग से आने वाली वायु के कारण हमारी नारकीय यातनाएँ बन्द हो गई हैं।' राजा ने आश्चर्य से यमदूत से इसका कारण पूछा। यमदूत ने उत्तर दिया—'आप के शुभ कर्मों के प्रताप से यहाँ की भीषण यातनाओं का प्रभाव नष्ट हो गया है। आप के सामने नरक में भी पष्ट नहीं हो सकता। अब इन दुष्टों को नरकों की यातनाएं भोगने के लिए छोड़कर आप स्वर्ग को चलिए।' राजा ने कहा—'तब मैं यहीं रहना चाहूँगा, क्योंकि जो सुख पीड़ितों के दुःखों को दूर करने में है, वह स्वर्ग आदि के भोग भोगने में नहीं है।

किसी भी अन्य कार्य से इतना सुख, इतना पुण्य नहीं हो सकता, जितना कि आर्त प्राणी की पीड़ा-यातना को दूर करने से होता है। उस मनुष्य को धिक्कार है जो पीड़ितों की सहायता नहीं करता। जो असहाय, दीन, दुखी, बालक, वृद्ध, संतप्त प्राणियों को सताता है वह मनुष्य नहीं राक्षस है। नरकों में पड़े हुए दुःखी प्राणियों को घोर यातनाओं से छुड़ाने से बढ़कर मैं स्वर्ग-सुख को भी नहीं समझता। मुझे तो यहीं स्वर्ग से बढ़कर सुख मिल रहा है। तुम जाओ, मैं तो यहीं रहूँगा।'

यमदूत ने राजा को बहुत समझाया, पर वे वहाँ से न हिले। तब दिव्य विमान लेकर देवराज इंद्र और धर्मराज आये और उन्होंने राजा को समझा-बुझा कर देव लोक के सुखों के भोगने के लिए चलने को कहा, पर राजा उन दुःखियों को छोड़कर स्वर्ग में जाने के लिए तैयार न हुए। तब इन्द्र और धर्मराज ने कहा—'सभी को अपने कर्मों को भोगना ही पड़ता है इन प्राणियों ने जो जघन्य कर्म किये थे उनके फल इन्हें नरकों में भोगने पड़ रहे हैं, भोगने से ही वे क्षीण होंगे। आपने शुभ कर्म किये हैं, आप स्वर्ग में चलकर सुखों को भोगें।' राजा ने शुभ कर्मों का लेखा पूछा। धर्मराज बोले-'जिस प्रकार समुद्र के जल-कण, आकाश के तारागण, गंगा के बलु-कण असंख्य हैं उसी

प्रकार आपके शुभ कर्म असंख्य हैं। अभी-आपने यहाँ रुक कर जो सुख इन नरकवालों को दिये हैं उसके कारण आप के लाख पुण्यों का भोग हो चुका। अब आप इनका पचड़ा छोड़ कर स्वर्ग-सुख भोगने के लिये चलिए और इन्हें अपना-अपना कर्म-फल भोगने दीजिये।

राजा बोले—'मेरे जो भी पुण्य फल शेष हों उन्हें मैं नरक में पड़े हुए इन प्राणियों की यातनाओं को दूर करने के लिए दिये देता हूँ। मैं स्वर्ग-सुख नहीं चाहता।'

राजा की विजय हुई। विष्णु भगवान ने स्वयं आकर वहाँ के सब जीवों को नरक से मुक्ति देदी और वे राजा को अपने साथ दिव्य लोक में लेगये। पुण्य का ऐसा अलौकिक प्रभाव है।'

अध्याय १६

पतिव्रता का सूर्योदय को रोकना; पातिव्रत माहात्म्य; ब्रह्मा-विष्णु-शिव का अत्रि के यहाँ जन्म लेना

पिता ने कहा—'हे तात ! तुमने संसार की व्यवस्था बतलाई। ऐसी दशा में मुझे अब क्या करना चाहिए, यह बतलाओ।'

पुत्र ने उत्तर दिया—'हे पिता ! यदि आप कल्याण

चाहते हैं तो अब घर-गृहस्थी का मोह छोड़कर वानप्रस्थाश्रम को ग्रहण कीजिये और एकान्त में रहकर आत्म-चिन्तन में मन लगाइये, एवं अपनी इन्द्रियों को वश में कर योगाभ्यास द्वारा मोक्ष प्राप्त कीजिये। इसी से आपको जन्म-मरण के कष्ट से छुटकारा मिलेगा और फिर आवागमन के चक्कर में न पड़ना पड़ेगा।'

पिता—'अविद्यारूपी काले साँप ने मुझे डसा है, अपने अमृतरूपी ज्ञान से मेरी रक्षा कीजिये। मैं मोह-ममता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ हूँ, आप मोक्ष-ज्ञान का वर्णन कर मुझे उससे मुक्त कीजिए।'

पुत्र ने कहा—'प्राचीनकाल में भगवान दत्तात्रेयजी ने अलर्क को जिस ज्ञान का उपदेश दिया था उसी का वर्णन मैं करता हूँ। पूर्वकाल में कौशिक नामक एक ब्राह्मण था। पूर्व जन्म के पापों के कारण उसके शरीर में भयंकर कोढ़ निकल आया। उसकी स्त्री बड़ी पतिव्रता थी। वह देवता की तरह अपने पति की पूजा करती थी। उसके शरीर से बहने वाले रुधिर, पीप आदि को धोकर घावों में दवा लगाती; उसके मल-मूत्र आदि को साफ करती; मधुर-कोमल वाणी से एवम् सेवा-शुश्रूषा से उसे सदा प्रसन्न रखने की चेष्टा करती। इतने पर भी उसका पति उसे मारता पीटता और कड़े वचन कहता। पर स्त्री इसका

विचार न कर बड़े भक्तिभाव से उसकी सेवा-पूजा करती रहती। एकबार कौशिक ने एक वेश्या को देखा। वह उसके ऊपर मुग्ध हो गया। उसने अपनी स्त्री से कहा कि तू मुझे उस वेश्या के पास ले चल नहीं तो मैं जीवित नहीं रहूँगा। पति को सन्तुष्ट करने के लिए स्त्री ने उसे अपने कन्धे पर बैठालकर रात्रि के समय वेश्या के यहाँ पहुँचाया। रास्ते में माण्डव्य नामक ऋषि शूली पर टँगे हुए थे। उन्हें धोखे से चोरी के अपराध में दण्ड दिया गया था। वे शूली पर टँगे हुए तड़प रहे थे। अन्धकार के कारण कुछ सूझ न पड़ता था। कौशिक के पैर का धक्का जोर से ऋषि के लगा। इससे उन्हें बड़ा कष्ट हुआ। उन्होंने शाप दिया कि जिसने मुझे यह कष्ट दिया है वह सूर्योदय के पहले नष्ट हो जाय। इस भयंकर शाप को सुनकर पतिव्रता काँप उठी। उसने पातिव्रत धर्म के बल पर सूर्य को उदय होने से रोक दिया। सूर्य के न उदय होने से सब शुभ कार्य बन्द हो गये। यज्ञ, हवन न होने के कारण देवता भी बहुत व्याकुल हुए। विश्व को संकट में पड़ा हुआ देख ब्रह्माजी ने देवगण से कहा कि आप लोग जगत के कल्याण के लिए अत्रि ऋषि की महापति-व्रता पत्नी अनुसूयाजी को प्रसन्नकर सूर्योदय की व्यवस्था कीजिए, वे ही उस पतिव्रता को समझाकर जगत का

कल्याण कर सकती हैं। देवगण ने जाकर अनुसूया जी को प्रसन्न किया। अनुसूया जी ने पूछा कि आप लोग क्या चाहते हैं? देवगण ने अपने आने का अभिप्राय बतलाया। अनुसूयाजी ने कहा कि पातिव्रत धर्म का माहात्म्य किसी तरह झूठा नहीं हो सकता। इस कारण उस पतिव्रता ब्राह्मणी का सम्मान कराकर उससे क्षमा करा दूँगी और ऐसी व्यवस्था कर दूँगी कि सूर्योदय तो होने लगे किन्तु उसके पति का भी नाश न हो।'

देवगण अनुसूया जी को लेकर पतिव्रता ब्राह्मणी के पास गए। अनुसूयाजी ने ब्राह्मणी का सम्मान करते हुए कहा–'स्त्री के लिए पातिव्रत धर्म से बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। पातिव्रत धर्म के पालन करने से उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं; सभी धर्मों के फल उसे अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। यज्ञ, दान, तप, व्रत आदि किये बिना ही उसे अपने पति के किये हुए सभी शुभ कर्मों का आधा फल अनायास ही प्राप्त हो जाता है। केवल पातिव्रत धर्म के कारण ही स्त्री को दिव्य और अक्षय लोक अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं।'

ब्राह्मणी ने अनुसूयाजी का बड़ा आदर-सत्कार किया और श्रद्धापूर्वक कहा–'इस लोक और परलोक में स्त्रियों की गति पति में ही है। यह समझकर ही मैं अनन्य भाव

से अपने पति की सेवा कर रही हूँ। मेरा अहोभाग्य है कि आपकी ऐसी पतिव्रता ने आकर मुझे अपने दर्शन और उपदेश देकर मुझे कृतार्थ किया। अब आप अपने आने का कारण बतलायें।'

अनुसूयाजी ने आदि से अन्त तक सब बातें बतलाकर प्रेम पूर्वक कहा—'तुम्हारे पातिव्रत धर्म के प्रभाव से सूर्योदय होना बन्द हो गया है, इस कारण संसार के सभी कार्य रुक गये हैं। और संसार तथा देवगण घोर संकट में पड़ गये हैं। साध्वी स्त्री का कर्तव्य है कि वह अपने प्रभावसे सब का कल्याण करती रहे। तुम्हें उचित है कि जगत के कल्याण के लिए तुम सूर्योदय होने दो, क्योंकि तुम्हारी आज्ञा के बिना सूर्योदय नहीं हो सकता और न जगत का संकट ही दूर हो सकता है'

ब्राह्मणी ने कहा कि माण्डव्य ऋषि के शाप के कारण सूर्योदय होते ही मेरे पति का नाश हो जायगा। अनुसूया जी ने कहा कि तुम चिन्ता न करो। मैं अपने पातिव्रत धर्म के प्रभाव से तुम्हारे पति को नीरोग और जीवित कर दूँगी। अनुसूयाजी की बात मान कर ब्राह्मणी ने विधिपूर्वक हवन करने के अनन्तर सूर्य भगवान को अर्घ्य दिया। उसके अर्घ्य देते ही सूर्योदय हो गया और जगत का संकट दूर हो गया। उधर उस स्त्री का पति प्राण

रहित होकर गिर पड़ा। ब्राह्मणी ने उसे आदर और प्रेम से अपनी गोद में उठा लिया। अनुसूया जी ने यह कह कर उसे जिला दिया कि यदि मनसा, वाचा, कर्मणा एकान्त भाव से मैंने केवल पति की ही आराधना की हो और पति से बढ़कर किसी को न समझा हो एवम् संसार के किसी पुरुष को पुरुष रूप से न देखा हो तो इस पतिव्रता ब्राह्मणी का पति जीवित, स्वस्थ और युवा हो जाय। अनुसूयाजी के प्रभाव से ब्राह्मण दिव्य रूप धारण कर जीवित होगया। उसके देवताओं के-से दिव्य और युवा शरीर को देख कर सब बहुत प्रसन्न हुए। देवगण ने पुष्प-वृष्टि कर अनुसूया जी की स्तुति की और कहा कि आपने संसार का संकट दूर कर देवगण का कार्य साधन किया है, इस कारण आप हमसे वर माँगें। अनुसूया जी ने कहा कि यदि ब्रह्मा जी और देवगण मुझ से प्रसन्न हैं और मुझे वर देना चाहते हैं तो मैं यह वर माँगती हूँ कि ब्रह्मा, विष्णु और महादेव मेरे पुत्र होकर अवतार लें और मैं अपने पति सहित योग के द्वारा परम पद को प्राप्त होऊँ। देवगण ने अनुसूया जी को मन चाहा वर देकर अपने-अपने स्थानों को प्रस्थान किया।

यथासमय महर्षि अत्रि के अंश से ब्रह्मा जी चन्द्रमा के रूप, में विष्णु भगवान दत्तात्रेय के रूप में, और शिव जी

दुर्वासा के रूप में अनुसूया के गर्भ से प्रकट हुए। महर्षि अत्रि ने उनके यथा-योग्य संस्कार किये और चन्द्रमा को ब्राह्मणों एवं औषधियों का राजा बना कर प्रजापति के पद पर प्रतिष्ठित किया। दुर्वासा जी जिस समय गर्भ में आये उसके सात दिन बाद ही कार्तवीर्य ने उनकी माता को बहुत भय दिखाया, इस कारण दुर्वासा जी क्रोध कर अपनी माता की रक्षा के लिए बाहर चले आये और तभी से वे उग्र रूप धारण कर दुष्टों को दण्ड देते हुए संसार में विचरने लगे। चन्द्रमा अपनी अमृत मय शीतल किरणों से औषधियों एवम् संसार का कल्याण करते हुए जगत का शासन करने लगे। विष्णु के अवतार दत्तात्रेय जी अपने प्रभाव और उपदेशों से दुष्टों का संहार और धर्म की स्थापना करते हुए जगत का कल्याण करने लगे। उनके मधुर स्वभाव और दिव्य तेज के कारण अनेक ऋषि कुमार सदा उन्हें घेरे रहते थे। उनसे अपना पीछा छुड़ाने के लिए एक बार तालाब में स्नान करते समय वे जल में छिपकर बैठ गए। किन्तु प्रेम और श्रद्धा के कारण उनके साथी ऋषिकुमार उनकी प्रतीक्षा करते हुए किनारे पर बैठे रह गए। बहुत काल व्यतीत होने पर दत्तात्रेयजी को प्रकट होना पड़ा, किन्तु वे एक सुन्दरी स्त्री को अपने साथ लेकर प्रकट हुए। इतने पर

भी ऋषिकुमारों की श्रद्धा और भक्ति कम न हुई। तब दत्तात्रेयजी उस स्त्री के साथ नृत्य, रास आदि में प्रवृत्ति हुए। इतने पर भी ऋषिकुमारों की श्रद्धा दूर न हुई। तब दत्तात्रेयजी ने उस स्त्री के साथ मद्य-पान और विहार करना प्रारम्भ किया। उनके इस आचरण को देखकर ऋषिकुमार उन्हें छोड़कर चले गये। किन्तु योगीश्वर होने के कारण मद्य-पान और स्त्री-संग से भी उन्हें कोई दूषण न लग सका। योग का ऐसा ही प्रभाव है। संसार को भ्रम में डालकर योग का प्रभाव प्रदर्शित करने के लिए दत्तात्रेयजी उस स्त्री के साथ भीषण तप करने लगे।'

अध्याय १८-१९

राज्य से नरक; देवगण एवं कार्तवीर्य अर्जुन का दत्तात्रेय को प्रसन्न कर ऐश्वर्य प्राप्त करना; लक्ष्मी जी के वास के आठ स्थानों के फल

सुमति बोले—'बहुत समय राज्य करने के बाद महाराज कृतवीर्य स्वर्गवासी हुए। मंत्रियों, पुरोहितों, और प्रजाजन ने कृतवीर्य के पुत्र अर्जुन को राजगद्दी पर बैठालना चाहा। अर्जुन ने सबको सम्बोधित कर कहा—'मैं राज्य नहीं करना चाहता, क्योंकि राज्य करते समय कर्तव्य पालन में त्रुटि होना स्वाभाविक है। इस कारण राज्य से नरक में जाना पड़ता है। व्यापार करनेवाले अपनी आय का

बारहवाँ हिस्सा और खेती व गो-पालन करने वाले छठवाँ हिस्सा करके रूप में राजा को देते हैं। इस प्रकार राजा की जीविका वृत्यन्तरवृत्ति कही जाती है। जो राजा कर लेने के बाद भी अपनी प्रजा की रक्षा नहीं करता उसे महान पाप लगता है और घोर नरक में जाना पड़ता है। जिससे नरक जाना पड़े ऐसे काम को मैं नहीं करना चाहता। मैं तो योग के द्वारा अलौकिक सिद्धि प्राप्त करना चाहता हूँ।'

जब मंत्रियों, पुरोहितों और प्रजाजन ने उसे बहुत समझाया तब उसने कहा कि यदि मुझे यौगिक सिद्धियाँ प्राप्त होजाएँ और मैं सुख-पूर्वक समस्त पृथ्वी का चक्रवर्ती राज्य करते हुए प्रजा की सब तरह से रक्षा कर सकूँ और अपने कर्तव्य से च्युत न होऊँ तो मैं राज्य करना स्वीकार करसकता हूँ। उसकी बात सुनकर गर्गजी बोले—'यदि तुम इस प्रकार का निष्कंटक चक्रवर्ती राज्य करते हुए धर्म पूर्वक प्रजा का पालन करना चाहते हो तो विष्णु भगवान के अंश, जगत का पालन करने वाले श्रीदत्तात्रेयजी की आराधना करो। वे दुष्टों का संहार कर तीनों लोकों का पालन और धर्म की संस्थापना कर रहे हैं। संसार को भ्रम में डालने के लिए सुरा और सुन्दरी का सेवन करते हुए एक डोंगी में रहते हैं। पूर्वकाल में जन्भ की अध्यक्षता में दैत्यों ने इन्द्रादि देवगण को हराकर स्वर्ग और यज्ञ

भाग्य से वंचित कर दिया था। शक्तिहीन, क्षीण और दुःखी होकर देवगण ने बृहस्पतिजी के समझाने से ऊपर से कुत्सित-आचरण करने वाले दत्तात्रेयजी की सेवा बड़ी भक्ति-श्रद्धा से करनी प्रारम्भ की। दत्तात्रेयजी सुरा और सुन्दरी का सेवन करते हुए देवगण की सेवा स्वीकार करने लगे। कुछ समय बीतने पर उन्होंने देवगण से कहा कि आप लोग मेरे ऐसे उन्मत्त व्यक्ति की इस प्रकार भक्ति-भाव से सेवा क्यों कर रहे हैं? देवगण ने प्रार्थना की कि आप दैत्यों के संहार का उपाय कर हमारी रक्षा कीजिए। दत्तात्रेयजी ने कहा कि मैं प्रमत्त हूँ सुरा का सेवन करता हूँ और जितेन्द्रियभी नहीं हूँ, आप मुझसे शत्रु के विनाश की इच्छा कैसे करते हैं? देवगण ने विनय पूर्वक कहा कि हे जगन्नाथ! आप निष्पाप और निर्लेप हैं, विद्या के कारण आपका अन्तःकरण शुद्ध है और ज्ञान के कारण आप निर्मल हैं। दत्तात्रेय जी ने कहा कि यह सत्य है कि मेरे पास समदर्शी विद्या है, किन्तु इस स्त्री के कारण मैं उच्छिष्टता को प्राप्त हुआ हूँ। मैं स्त्री के संसर्ग से दूषित हूँ। देवगण ने नम्रतापूर्वक कहा कि ये तो जगत की माता निर्दोष हैं; सूर्य की किरणें द्विज और चाण्डालों पर एक समान पड़ती हैं। अन्त में देवगण पर प्रसन्न होकर दत्तात्रेय जी ने उनसे कहा कि तुम युद्ध के लिए दैत्यों

कोमेरे सामने लाओ, मेरी दृष्टि पड़ते ही उनके बल और तेज क्षीण हो जायँगे एवं वे नष्ट हो जायंगे'।

दत्तात्रेय जी के वचन पर विश्वास कर देवगण ने दानवों को युद्ध के लिए ललकारा। अस्त्र-शस्त्र लेकर दानव देवगण पर टूट पड़े। घोर युद्ध के बाद देवगण हार कर भागे और दत्तात्रेय के आश्रम में जाकर उन्होंने शरण ली। देवगण का पीछा करते हुए दैत्य भी उस आश्रम में जा पहुँचे। वहाँ उन्हें दत्तात्रेय जी की स्त्री के रूप में लक्ष्मी जी के दर्शन हुए। दैत्य उनके अलौकिक रूप-गुण पर इतने मुग्ध होगये कि उन्हें युद्ध और संसार के दूसरे सभी कार्य भूल गये। वे आपस में सलाह कर लक्ष्मी जी को शिविका में चढ़ाकर सरपर लेगये। उनकी मूर्खता देख दत्तात्रेयजी ने देवगण से कहा—'तुम लोग सोच मत करो। शीघ्र ही दैत्यों का नाश होगा और तुम्हें राज्य मिलेगा। वे लोग लक्ष्मीजी को सर पर चढ़ाकर लेगये हैं। सरपर की लक्ष्मी स्थिर नहीं रह सकती; वह जिसके सर पर जाती है उसे नष्ट कर दूसरे के पास चली जाती है। अन्य सात स्थानपर यदि लक्ष्मी का वास होता है, तो वह स्थायी होकर रहती है। यदि लक्ष्मी का वास मनुष्य के पैर पर हो तो उसके घर धन आयेगा, यदि कमर पर हो तो वस्त्र, आभूषण आदि प्राप्त होंगे; यदि गुप्त स्थान पर हो तो

उसे स्त्री की प्राप्ति होगी; यदि गोद में हो तो संतान का लाभ होगा; यदि हृदय में हो तो उसके मनोरथ पूर्ण होंगे; यदि कण्ठ में हो तो स्वजन, बन्धु मित्रों, से मेल-मिलाप होगा; यदि मुख पर हो तो उत्तम वाक्य, कवित्व की सृष्टि करेगी। किन्तु यदि लक्ष्मी का वास मनुष्य के सर पर हो जाय तो वह उसे छोड़ कर दूसरे के पास चली जाती है। राक्षस गण यहाँ से उसे सरपर लेगये हैं, इससे निश्चय ही वह उन्हें त्याग देगी। तुम भय छोड़कर युद्ध करो—'तुम्हारी विजय होगी।'

उनके उपदेश से देवगण ने युद्ध किया। दैत्य हारकर नष्ट होगये। देवगण को स्वर्ग का राज्य प्राप्त हुआ।

गर्ग के उपदेश से कार्तवीर्य अर्जुन भक्तिभाव से दत्तात्रेयजी की सेवा पूजा करने लगे। वे उन्हें माला, चन्दन, उत्तम भोजन, दिव्य पदार्थों से एवं हाथ-पैर दबाकर तथा अन्य प्रकार की छोटी-बड़ी टहल करके प्रसन्न करने लगे। कुछ समय बीतने पर दत्तात्रेयजी ने अनेक बार उनसे वे ही बातें कहीं जो उन्होंने देवगण से कही थीं। उनकी बातें सुनकर अर्जुन ने विनीतभाव से उत्तर दिया—'मैं आपकी शरण में आया हूँ। आप मुझे अपनी माया से मोहित मत कीजिये, ये जगत की माता हैं, ये तो निष्पाप हैं। आप मेरे ऊपर दया करें।'

अन्त में दत्तात्रेयजी ने अर्जुन से कहा—'तुमने अपनी श्रद्धा-भक्तिपूर्ण अनन्य सेवा से मुझे जीत लिया। तुम वर माँगो। जो प्राणी मुझे सुगन्धित द्रव्य,पुष्प,मिष्ठान्न,मांस, सुरा,संगीत,उत्सव आदि से संतुष्ट करेगा, उसकी सब कामनाएँ पूर्ण होंगी। मैं तुम्हें पृथ्वी पर सभी ऐश्वर्यों से पूर्ण करताहूँ। तुम और भी जो इच्छा हो मुझसे माँग लो।'

अर्जुन ने हाथ जोड़कर विनय पूर्वक कहा—'आप कृपा कर मुझे वह ऋद्धि प्रदान कीजिये जिससे मैं राज्य एवं प्रजा का पालन करते हुए भी अधर्म से बचा रहूँ। मेरे अति बलशाली हजार भुजाएँ हों और मेरा सामना कोई न कर सके। मैं तीनों लोकों का राज्य करता हुआ सदा सब की रक्षा करूँ। मेरे राज्य में कभी रोग, शोक, व्याधि, दुष्काल न हों। मैं मनमाना दान देता रहूँ और सदा आपकी भक्ति में रत रहूँ।'

दत्तात्रेयजी ने उसे मन चाहा वर दिया। दत्तात्रेयजी की कृपा से वशिष्ठ आदि ऋषियों ने, वासुकी आदि नागों, सुमेरु आदि पर्वतों ने, तार्क्ष्य आदि पक्षियों ने एवं पृथ्वी के सभी प्राणियों ने कार्तवीर अर्जुन का राज्याभिषेक किया। राजगद्दी पर बैठकर अर्जुन ने घोषणा की कि मुझे छोड़कर कोई दूसरा शस्त्र ग्रहण न करे। वे धर्मपूर्वक सब की विधिवत रक्षा करने और प्रजा को सुख देने लगे।

जिस तिथि को विष्णु भगवान के अवतार दत्तात्रेयजी ने प्रसन्न होकर उन्हें वर दिया था उसी तिथि को वे सदा दत्तात्रेयजी का यज्ञ और उत्सव करने लगे। उन्हीं जगत के पालन, उत्पादन और नाश करनेवाले आदि पुरुष दत्तात्रेयजी की दया से राजा अलर्क को भी योग की प्राप्ति हुई थी।'

अध्याय २०-२५

ऋतध्वज (कुवलयाश्व) और मदालसा की कथा; नागपुत्रों की मित्रता; नागराज अश्वतर का तप द्वारा मृत मदालसा को पुत्री रूप में प्राप्त कर ऋतध्वज को देना।

सुमति (जड़ पुत्र) बोले–'प्राचीन काल में शत्रुजित नामक एक बहुत ही पराक्रमी राजा थे। उनके यज्ञमें स्वयम् देवराज इन्द्र ने प्रकट होकर सोम-पान किया था। राजा शत्रुजित के ऋतध्वज नामक एक बहुत ही सुन्दर, प्रतापी, बुद्धिमान्, गुणवान पुत्र उत्पन्न हुआ। वह बुद्धि में बृहस्पति, पराक्रम में इन्द्र और रूप में अश्विनी कुमारों के समान था। उसके गुण और स्वभाव पर मोहित होकर अनेक राजकुमार सदा उसे घेरे रहते थे। उन सब के साथ वह शास्त्र-काव्य की चरचा, नृत्य-गान, व्यायाम-अस्त्राभ्यास, क्रीड़ा-कौतुक, विहार-विश्राम, आमोद-प्रमोद में इतने सुख

से समय बिताता था कि किसी को इस बात का पता न लगने पाता था कि कब दिन बीता और कब रात हुई एवम् कब रात बीती और दिन हुआ। नागलोक से नाग-राज अश्वतर के दो पुत्र पृथ्वीके विभिन्न देशोंमें भ्रमण करते हुए संयोगवश ऋतध्वज के पास आए और उसके शील, स्नेह के पाश में बँधकर मित्रों की तरह उसके साथ रहने एवं आमोद-प्रमोद में सुख से दिन व्यतीत करने लगे। बहुत काल तक ऋतध्वज के साथ रहने के अनन्तर नागकुमारों को विवश होकर अपने पिता के पास नागलोक जाना पड़ा। किन्तु वहाँ उनका मन न लगता था। न तो आत्मो-न्नति के लिए वे शास्त्र का चिन्तन करते थे और न किसी प्रकार के आमोद-प्रमोद में ही भाग लेते थे। उनको इस प्रकार दुःखी देख उनके पिता ने उनसे इसका कारण पूछा। नागकुमारों ने अपने पिता से राजकुमार ऋतध्वज के शील, स्वभाव और गुणों की प्रशंसा कर कहा कि बिना उनके हमें जीवन में कोई भी सुख नहीं जान पड़ता, स्वर्गलोक और नागलोक के भी सारे सुख हमें फीके जान पड़ते हैं।

नागपुत्रों की बात सुनकर उनके पिता ने कहा—'निश्चय ही वह मनुष्य धन्य है जिसकी प्रशंसा उसके पीठ-पीछे भी की जाती है। संसार में शील ही सबसे बढ़कर है, यदि शास्त्र जानने वाला शील से रहित हो तो उससे वह मूर्ख

कहीं उत्तम है जिसमें शील हो। तुम्हारा मित्र शीलवान है, इस कारण वह धन्य है। तुम नाग-लोक के दिव्य रत्नों, पदार्थों आदि को ले जाकर जिस प्रकार हो सके उनका उपकार करो। जो अपने मित्रों का उपकार और शत्रुओं का अपकार नहीं करता उस मनुष्य को धिक्कार है। जो उन्नतिशील होते हैं वे सदा अपने मित्रों का उपकार करते रहते हैं।'

नागकुमारों ने कहा 'उन्हें किसी भी पदार्थ का अभाव नहीं है। हम उन्हें कोई भी पदार्थ देकर उनका उपकार नहीं कर सकते। उन्हीं से दूसरे लोगों की सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं। उनके पास वह विज्ञान है जिसके द्वारा उन्हें सभी कुछ सुलभ है और जिसके बल पर वे दूसरों के संदेहों तथा अभावों को दूर करते रहते हैं। उनका हम क्या उपकार कर सकते हैं? केवल एक बात है जिसके द्वारा उनकी सहायता की जा सकती है। पर वह तो प्रायः असंभव ही है। कैसे उसकी पूर्ति होगी यह हम नहीं जानते!'

नागराज ने कहा—'मैं उस कार्य को सुनना चाहता हूँ। भले ही वह असाध्य अथवा कष्ट साध्य हो! जो दृढ़तापूर्वक उद्योग में लगे रहते हैं वे मन चाहे पद को प्राप्त करते और पूजे जाते हैं। अपने मन, चित्त और इन्द्रियों को वश में कर उद्योग में लगे रहने वाले मनुष्यों को स्वर्ग

और इस लोक में कोई भी कार्य असंभव नहीं होता, कोई भी पदार्थ अप्राप्य नहीं होता। यदि चींटी भी चलने लगे तो वह भी हजारों योजन तय कर लेती है और न चलने वाले गरुड़ भी एक पग आगे नहीं बढ़ सकते। उद्योगशील पुरुष के सामने साध्य, असाध्य कुछ भी नहीं होता। कहाँ ध्रुवलोक और कहाँ यह पृथ्वी तल! उसी अप्राप्य ध्रुवलोक को राजा उत्तानपाद के उद्योगशील पुत्र ने प्राप्त कर लिया।'

नागकुमारों ने कहा—'एक समय राजकुमार के पिता राजा शत्रुजित के पास गालवजी एक उत्तम घोड़ा लेकर गये। राजा ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया और आने का कारण पूछा। ऋषि ने कहा कि एक दुष्ट राक्षस मेरे आश्रम में आकर लोगों को सताता और तप एवम् धर्म-कृत्यों में विघ्न डालता है। मैं शाप देकर उसे नष्ट कर सकता हूँ, किन्तु शाप देते ही मेरे इतने दिनों का संचित पुण्य नष्ट हो जायगा, इस कारण क्रोध नहीं करता। एक बार मैं चिन्ता करता हुआ बैठा था, उसी समय आकाश से यह घोड़ा उतरा और उसी समय यह आकाशवाणी हुई कि आकाश, पाताल, पृथ्वी, समुद्र कहीं भी इस घोड़े की गति रुक नहीं सकती, इस कारण इसका नाम कुवलयाश्व है, इस पर बैठकर राजकुमार ऋतध्वज उस राक्षस का नाश एवं धर्म की रक्षा करेंगे। मैं आकाशवाणी को सुनकर इस

. घोड़े को आपके पास लाया हूँ।

राजा ने उत्तम मुहूर्त में राजकुमार को उस घोड़े पर सवार कराया और उसे मुनि के साथ राक्षस से लड़ने के लिए भेज दिया। मुनि के साथ जाकर राजकुमार उनके आश्रम में उनकी रक्षा करते हुए रहने लगे। कुछ समय बाद वह राक्षस मुनियों को सताने के लिए आश्रम में आया और शूकर का रूप धर कर उपद्रव करने लगा। राजकुमार घोड़े पर सवार होकर उसके सामने आया। दोनों में घोर युद्ध होने लगा। अन्त में राजकुमार के बाण से घायल होकर शूकर वहाँ से भागा और एक भयंकर गर्त में विलीन होगया। राजकुमार भी घोड़े पर उसका पीछा करता हुआ उस गर्त में गया। देर तक घोर अन्धकार में राजकुमार घोड़ा फेंकता हुआ चला गया। बहुत देर बाद राजकुमार गर्त के दूसरी ओर एक दूसरे लोक में जाकर निकला। वहाँ खूब प्रकाश था। किन्तु शूकर कहीं न देख पड़ा। सामने ही देवराज इन्द्र के महल की तरह एक बहुत ही सुन्दर सोने का दिव्य महल चमकता जगमगाता देख पड़ा। उसके चारों ओर एक बड़ा भारी नगर था, किन्तु उसमें एक भी मनुष्य नजर न पड़ा। कुछ समय बाद राजकुमार को एक अत्यन्त सुन्दरी कुमारी महल के पास घूमती हुई देख पड़ी। राजकुमार ने वहाँ का हाल

पूछने के लिए उसे पुकारा। उसकी आवाज सुनते ही वह युवती भाग कर राजमहल के ऊपर चढ़ गई। राजकुमार को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने घोड़े को एक ओर बाँध दिया और महल में घूमने लगा। ऊपर एक बहुत ही सुन्दर कमरे में एक रत्न जटित पलंग पर एक अप्सरा की तरह सुन्दरी कन्या देख पड़ी। राजकुमार को देखकर वह तुरन्त पलंग से उतर कर खड़ी हो गई। कुछ देर तक छिपी हुई नजरों से राजकुमार की ओर देखने के अनन्तर वह मूर्छित होकर एकाएक पृथ्वी पर गिरपड़ी। राजकुमार ने पानी के छींटेदेकर, पंखा डुला कर एवम् और उपचार करके उसकी मूर्छा दूर की। राजकुमारी उठकर बैठ गई। तब राजकुमार ने उससे मूर्छा का कारण पूछा। राजकुमारी का मुख लज्जा से लाल हो गया। उसने मन्द-मन्द मुस्कराते हुए संकोच से मुँह नीचा करलिया। उसी समय उसकी सखी वहाँ आगई। राजकुमारी ने धीमे स्वर में अपनी सखी से कुछ कहा। सखी ने मधुर स्वर में राजकुमार से कहना प्रारम्भ किया—'स्वर्ग में विश्वावसु नामक गन्धर्वों के राजा निवास करते हैं। ये उन्हीं की राजपुत्री हैं। मदालसा इनका नाम है। वज्र नामक दानव का पुत्र पाताल केतु अपनी दानवी माया से सबको धोखे में डालकर इन्हें यहाँ हर लाया है और आगामी त्रयोदशी को वह इनसे

विवाह करना चाहता है,किन्तु यह उससे विवाह नहीं करना चाहती। इन्हें दुःखी तथा आत्म-घात करने के लिए उद्धत देख देव-गौ, सुरभि ने इन्हें आत्म-घात करने से रोका और बतलाया कि राक्षस से शीघ्र ही तुम्हारी मुक्ति हो जायगी, पृथ्वी पर से एक व्यक्ति आकर उस दानव को अपने बाणों से बेधेगा और तुम्हें अपनी रानी बनायेगा। सुरभि के समझाने से इन्होंने धैर्य धारण किया है। मैं विंध्य की बेटी और वीर पुष्करमालिन की पत्नी हूँ। मेरे पति को शुम्भ ने मार डाला है। तभी से मैं अपने परलोक को बनाने के विचार से तीर्थों में भ्रमण करती हुई परोपकार में लगी रहती हूँ। मदालसा को कष्ट में देखकर मैं इन्हें धैर्यदेती रहती हूँ। अभी कुछ समय पहले वह दुष्ट पाताल केतु शूकर का रूप धारण किए हुए यहाँ आयाथा। उसके शरीर में किसी का बाण बिंधा हुआथा। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस व्यक्ति के सम्बन्ध में सुरभि ने कहा था उसने उस राक्षस को अपने बाणों से बेधा है और वह किसी समय आकर राजकुमारी मदालसा को अपनी पत्नी बनाने के लिए ले जायगा। इधर दैव्य-योग से आपके देवोपम रूप और गुणों पर मोहित होकर राजकुमारी अपना हृदय आपके चरणों में अर्पण कर चुकी हैं। इसी कारण ये मूर्छित हुईं और इस समय भी चिन्तित हैं।'

राजकुमार ने आदि से अन्त तक सारा वृतांत बतलाया। राजकुमारी और उसकी सखी कुण्डला दोनों बहुत प्रसन्न हुईं। अनेक प्रकार के कथोपकथन के अनन्तर मदालसा और राजकुमार आपस में एक दूसरे के साथ विवाह करने के लिए तैयार हो गए। कुण्डला ने दोनों से कहा कि विवाह विधिपूर्वक होना चाहिए, नियोग की रीति से नहीं। किन्तु वहाँ शास्त्रोक्त विधि से विवाह करने के कोई साधन न थे। तब कुण्डला ने अपने गुरु तुम्बुरु का स्मरण किया। उन्होंने आकर वेदोक्त विधि से दोनों का विवाह करा दिया। दोनों से विदा होकर तप के लिए जाते हुए कुण्डला ने राजकुमार से कहा–'पति को सदा अपनी स्त्री का भरण-पोषण और रक्षण करना चाहिए। धर्म,अर्थ और काम की सिद्धि में स्त्री से ही पति को पूर्ण सहायता मिलती है,बिना स्त्री के कोई भी पुरुष धर्म,अर्थ और काम की सिद्धि नहीं कर सकता। बिना स्त्री के देवता,पितर,बन्धु-बान्धव आदि किसी का भी सत्कार-पूजन पुरुष ठीक से नहीं कर सकता। स्त्री के कारण ही पुरुष को गृहस्थाश्रम में सुख और सिद्धि की प्राप्ति हो सकती है। धर्म,अर्थ,और काम की सिद्धि एवम् सन्तान की प्राप्ति के लिए पुरुष को स्त्री और स्त्री को पुरुष की सहायता के ऊपर निर्भर रहना पड़ता है। आप लोग अपने-अपने धर्म का पालन करके एक दूसरे को

सुख दीजिए।'

कुमार को नमस्कार कर एवम् मदालसा से मिल-भेंट कर कुण्डला चली गई। राजकुमार मदालसा को अपने साथ घोड़े पर चढ़ाकर अपने राज्य को जाने लगा। इसी समय दैत्यों ने प्रकट होकर उसे चारों ओर से घेर लिया और वे उस पर अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करने लगे। राजकुमार ने भी अपने अस्त्र-शस्त्र संभाले और देखते-देखते दैत्यों का संहार कर डाला। इसके अनन्तर वह मदालसा को लेकर अपने पिता के पास गया और आदि से अन्त तक सब वृत्तान्त कह सुनाया। राजा ने अपने प्रतापी पुत्र को आदर के साथ गले लगाते हुए कहा-'मैं तुम्हारे ऐसे धर्मरक्षक, परोपकारी, वीर, सुन्दर, गुणवान पुत्र को पाकर कृतार्थ होगया। तुम्हारे कारण हमारे कुल का यश बहुत बढ़ गया। तुमने पाताल में जाकर असुरों का नाश किया, इस कारण तुम इस कुल में सब से श्रेष्ठ हुए। जो अपने पिता एवम् पूर्व-पुरुषों द्वारा उपार्जित किये हुए धन, देश, यश को बढ़ता है वही संसार में श्रेष्ठ माना जाता है। जिसके जन्म से पिता का यश न बढ़े ऐसे अधम पुरुष का न होना ही उत्तम है। जो अपने उत्कृष्ट कर्मों के कारण प्रसिद्धि प्राप्त करता है वही श्रेष्ठ है, उसी का जन्म लेना सार्थक है।'

राजकुमार ऋतध्वज अपने पिता तथा नगर निवासियों से आदर-सत्कार पाते हुए एवं आनन्द से मदालसा के साथ विहार करते हुए सुख के दिन बिताने लगे। कुछ काल बीतने पर कुमार के पिता ने उन्हें एक बार फिर गालवजी के आश्रम पर धर्म-रक्षा के विचार से भेजा। राजकुमार अपने दिव्य घोड़े पर सवार होकर आश्रम में गए। वहाँ उन्हें एक तपस्वी देख पड़ा। वह उसी राक्षस का भाई था, जिसे राजकुमार नें पहले मारा था। इसका नाम तालकेतु था। तालकेतु अपने भाई का बदला लेने के विचार से मुनि का वेश बनाकर आश्रम के पास रहता था। उसने आडम्बर बनाकर एवम् मीठी-मीठी बातें करके राजकुमार को अपने वश में कर लिया। फिर एकबार उनसे कहा कि मैं वरुण देवता को प्रसन्न करने के लिए एक महान यज्ञ कर रहा हूँ। उससे आपका बड़ा कल्याण होगा। किन्तु ऐसे महान यज्ञ के लिए जिस बड़ी दक्षिणा की आवश्यकता है वह मेरे पास नहीं है। यदि आप अपने आभूषण उतारकर मुझे दे दें तो मैं उस यज्ञ को पूरा कर लूँ। फिर मैं आपकी सभी कामनाएं पूर्ण कर दूँगा। राजकुमार ने धर्म के लिए अपने आभूषण उतारकर उस कपट-मुनि को दे दिए। कपट-मुनि यह कहकर आभूषण लिए हुए सामने की नदी के जल में घुसकर अदृश्य हो

गया कि मैं वरुण-लोक को जाता हूँ और जब तक मैं न लौटूँ तब तक आप मेरे आश्रम में रहकर इसकी रक्षा कीजिए। कपट-मुनि के चले जाने पर राजकुमार वहीं रहकर उस आश्रम की रक्षा करने लगा। इधर वह दानव जल से निकलकर राजकुमार के पिता के पास गया और आभूषणों को दिखाकर बोला—'मेरे आश्रम के पास तपस्वियों की रक्षा करते हुए राजकुमार एक दुष्ट राक्षस के हाथ से मारे गए हैं। उन्होंने अन्त समय अपने आभूषण देकर मुझे आपके पास भेजा है। वन में तपस्वियों ने विधिवत दाह-कर्म कर दिया है। राजकुमार के लिए आप लोग शोक न करें, क्योंकि धर्म की रक्षा करते हुए वीर गति को प्राप्त हुए हैं।' यह कहकर और आभूषणों को वहीं पृथ्वी पर छोड़कर कपट-मुनि वहाँ से चला गया। राजा अपने प्रतापी पुत्र का मरण सुनकर मूर्छित होकर गिर पड़े। मदालसा ने अपने पति के आभूषणों को पहचान कर एवम् कपट-मुनि की बातों को सत्य जानकर तुरन्त अपने प्राण छोड़ दिए। राजा को कुछ समय बाद होश आया। अपनी पुत्र-वधू को मरा हुआ देख, उनका दुःख दूना हो गया। किन्तु किसी तरह धैर्य धारण कर उन्होंने उसके शव का अन्तिम संस्कार कराया और राज-धर्म का विचार कर प्रजा-पालन करते हुए शोक से दिन व्यतीत करने लगे।

इधर मदालसा की मृत्यु अपनी आँखों से देखने के बाद कपट-मुनि अपने आश्रम में लौट आया और राजकुमार से कह दिया कि आपके सहयोग से मेरा यज्ञ सफल हुआ, अब आप सुख पूर्वक अपने स्थान को जाइये। उससे विदा होकर राजकुमार अपने नगर में आए। वहाँ उन्हें सभी छोटे-बड़े शोक-संताप में मग्न देख पड़े। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। राजकुमार को देखकर नगर वालों को और उनके पिता को बड़ा आश्चर्य हुआ। अन्त में जब राजकुमार को सब के शोक और मदालसा की मृत्यु का कारण मालूम हुआ तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ। पहले तो वे मदालसा के वियोग में इतने व्याकुल हुए कि सब कुछ त्यागने के लिए तत्पर होगये, किन्तु फिर अपने पिता के प्रति अपने कर्तव्य को समझकर वे मन से सब प्रकार के भोगों कोत्याग कर अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए वहीं रहने लगे। उन्होंने प्रतिज्ञा करली कि मदालसा को छोड़कर और किसी स्त्री को ग्रहण न करेंगे। तभी से उन्होंने सभी प्रकार के सुखों और भोगों को त्याग दिया है और सदा मन मारे चिन्तित और उदास रहा करते हैं। उनके दुःख से उनके मित्र और सभी सम्बन्धी अत्यन्त दुःखी हैं।'

राजकुमार की कथा सुनकर नागराज अश्वतर बोले—'यदि लोग यह मानकर कि अमुक कार्य हमारी सामर्थ्य

के बाहर है, उसे करने का उद्योग ही छोड़ दें तब तो उद्योग दिन-पर-दिन कम होता चला जायगा। यथार्थ में मनुष्य को सदा पौरुष का भरोसा रखकर कार्य का आरंभ कर देना चाहिए,क्योंकि पौरुष एवं दैव दोनों पर ही कार्य की सफलता निर्भर रहती है। पुरुषार्थ को कभी त्यागना न चाहिए। अब मैं तप का आश्रय लेकर तुम्हारे मित्र के कल्याण की चेष्टा करूँगा।'

यह कहकर नागराज अश्वतर हिमालय पर्वत पर गये और तप, स्तुति द्वारा सरस्वती की आराधना करने लगे। उनकी आराधना से विष्णु-जिह्वा सरस्वती प्रसन्न हुईं और प्रकट होकर बोलीं–'हे नागराज कम्बल के भ्राता! तुम मनचाहा वर माँगो।' अश्वतर ने सम्पूर्ण स्वरों और उनके संबन्धनों का ज्ञान माँगा। सरस्वतीजी बोलीं–'हे नागराज! तुम अपने भाई कम्बल की तरह ही स्वर-ताल के ज्ञाता हो जाओगे। मेरी कृपा से सात स्वर,सात ग्राम, राग, सात गीत, सात मूर्छना, ४६ ताल, तीन ग्राम, चार पद, तीन लय, तीन यति, आदि तुम्हें पूर्णरूप से प्राप्त हो जायँ। गान विद्या में तुम्हारे सामान कोई न होगा।'

सर्व-जिह्वा सरस्वती नागराज अश्वतर की जिह्वा में प्रवेश कर गईं। सरस्वती से ऐसा दुर्लभ वर प्राप्त कर नागराज ने कैलाश पर्वत पर जाकर शिवजी की अरा-

धना प्रारम्भ की। उनके गायन-वाद्य-नृत्य से प्रसन्न होकर शिवजी ने उन्हें मन-चाहा वर देना चाहा। नागराज ने हाथ जोड़कर कहा—'यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो आप वर दें कि राजकुमार ऋतध्वज की मदालसा नामक जो स्त्री मृत्यु को प्राप्त हुई है, वह ठीक अपने पूर्व रूप-गुण-विचार सहित मेरे यहाँ कन्या रूप में प्रकट हो।'

शिवजी ने मुस्कराकर कहा—'ऐसा ही होगा। तुम श्राद्ध के दिन मध्यपिण्ड को श्रद्धा-भक्ति से खालेना। उसके प्रभाव से तुम्हारे मध्यम फण से मदालसा अपने पूर्व रूप-गुण सहित तुम्हारी कन्या होगी।'

शिवजी से वरदान प्राप्त कर अश्वतर अपने नागलोक को चले आये। यथा समय उनके मदालसा ने जन्म लिया। उन्होंने उसे महलों में इस प्रकार छिपा कर रक्खा कि उनको छोड़कर और किसी को भी उसका पता न चला। कुछ समय बीतने पर उन्होंने अपने पुत्रों से कहा कि तुम अपने मित्र राजकुमार ऋतध्वज को यहाँ बुला-लाओ, हम उन्हें देखना चाहते हैं। नागकुमार ऋतध्वज के पास गये और कुछ समय सुख से उनके साथ रहने के अनन्तर उन्होंने राजकुमार से कहा कि आप हमारे घर चलिए। ऋतध्वज ने उनसे कहा कि आप लोग इस प्रकार भेद-भाव की बात न कीजिए, क्यों कि यह घर

भी तो आपका-ही है। नागकुमारों ने कहा कि हम लोग तनिक भी भेद-भाव नहीं रखते। हम लोगों के लिये तो यह लोक (स्थान) और नागलोक एक ही समान हैं। किन्तु हमारे पिताने आपको देखने की ईच्छा प्रकट की है, इस लिये हम आप से वहाँ चलने का अनुरोध कर रहे हैं। नागकुमारों की बात सुनकर ऋतध्वज अपने पिता से आज्ञा माँग कर नागलोक को गए। वहाँ नागलोक की दिव्य मूर्तियों और सुन्दर,स्वस्थ, सुखी स्त्री-पुरुषों को देख-कर राजकुमार बहुत प्रसन्न हुए। नागकुमार अपने मित्र को राज-महल में लेगए। वहाँ रत्नजटित मयूर आसन पर बैठे हुए नागराज अश्वतर को देखकर सबने उन्हें प्रणाम किया। नागराज ने सबको आशीर्वाद देतेहुए कुमार को उठाकर छाती से लगा लिया और अपने समीप सिंहासन पर बैठालकर बोले—'तुम्हारा ही जीवन धन्य है, क्योंकि केवल तुम्हारे गुण, शौर्य, शील आदि की प्रशंसा तुम्हारे पीठ-पीछे भी होती रहती है। गुणियों का जीवन ही प्रशंसनीय है और गुणहीन व्यक्ति जीवित रहकर भी मृतक समान हैं। देव, पितर, विप्र, अभ्यागत, बन्धु-बान्धव, दुःखी, दरिद्री आदि सभी चाहते हैं कि गुणी पुरुष चिरकाल तक जीवित रहे। गुणी पुरुष ही अपने पिता और पूर्व पुरुषों के हृदय में संतोष, विश्वास, और गौरव

के भावों को उत्पन्न करता है। शत्रुओं को सन्ताप देता और सभी का कल्याण करता है। जो अपने गुणों के कारण विपत्ति में पड़े हुए प्राणियों को संकट से उबारता है उसीका जीवन धन्य है।'

नागराज और नागकुमारों ने अनेक प्रकार से राजकुमार का स्वागत-सत्कार किया। स्नान,भोजन,विश्राम,मनोविनोद आदि के अनन्तर नागराज ने राजकुमार से कहा कि आप की जो इच्छा हो मुझसे माँगिए, क्योंकि आप मेरे पुत्र के समान हैं। राजकुमार ने नम्रता पूर्वक उत्तर दिया—'भगवन ! आपकी कृपा से संसार का ऐसा कोई भी छोटा-बड़ा पदार्थ नहीं,जो मुझे प्राप्त न हो। मेरे प्रतापवान पिता पृथ्वी पर एक-छत्रराज कर रहे हैं। और उनकी कृपा से मेरी सभी अभिलाषाएं पूर्ण होती रहती हैं। जिनके पिता जीवित हैं उन्हें मैं बड़ा पुण्यवान मानता हूँ। फिर मैं तो अभी युवा हूँ, और युवा-अवस्था-रूपी धन के सामने और सभी धन तृण के समान तुच्छ हैं। फिर मेरा शरीर नीरोग और बलवान है। मैं अपनी युवावस्था और शारीरिक पराक्रम के बल पर कौन-सा पदार्थ प्राप्त नहीं कर सकता। इसके अलावा आपके आशीर्वाद को पाकर मेरे लिए अब कौन-सा पदार्थ अप्राप्य रह गया। आप ऐसे देवता के संसर्ग से मैं कृतकृत्य हो गया हूँ, मेरा जीवन सफल हो गया है।'

नागराज ने अनेक प्रकार से समझाकर राजकुमार से वर माँगने के लिए कहा। तब राजकुमार नम्रता पूर्वक बोला —'यदि आप वर देना ही चाहते हैं तो यह वर दें कि मेरे हृदय से पुण्य-संस्कार कभी नष्ट न हों। स्वर्ण, मणि, रत्न, महल, स्त्रियाँ, अन्न,पान, पुत्र तथा अन्य सभी पदार्थों को मैं पुण्य-रूपी वृक्ष के फल मानता हूँ। मेरा विश्वास है कि पुण्यवान के लिए संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है।' नागराज ने आशीर्वाद दिया कि तुम्हारी बुद्धि कभी धर्म से अलग न हो। फिर उन्होंने कहा कि तुम हमसे वह वस्तु माँगो जो तुम्हें पृथ्वी पर प्राप्त न हो सके। यह सुनकर राजकुमार भेदभरी दृष्टि से नागकुमारों की ओर देखने लगा। नागकुमारों ने अपने पिता से मदालसा की कथा बनाकर कहा कि राजकुमार ने प्रतीज्ञा की है कि मदालसा को छोड़कर किसी दूसरी स्त्री से संबन्ध न होगा। इस कारण आप कुछ ऐसा उपाय कीजिए जिससे इनका यह क्लेश दूर हो जाय। नागराज ने उत्तर दिया कि स्वप्न अथवा शाम्बरी माया के अतिरिक्त यह बात किसी दूसरे ढंग से संभव नहीं हो सकती। राजकुमार ने विरह-प्रेम, लज्जा और संकोच भरे भाव से कहा कि यदि आप माया-मयी मदालसा का भी दर्शन करा दें तो बड़ा अनुग्रह हो। नागराज ने उत्तर दिया कि आपके संतोष के लिए मैं मायामयी मदालसा का

दर्शन करा दूँगा। यह कहकर वे महल में छिपी हुई मदालसा को ले आए। उसे देखकर राजकुमार को बड़ा आश्चर्य हुआ, उन्होंने देखा, रूप-रंग, चाल-ढाल, आदि सभी वही हैं। वे 'प्रिये-प्रिये' कहते हुए आत्म-विस्मृत कीतरह उसकी ओर बढ़े। नागराज ने यह कहकर उन्हें रोका कि यह तो मायामयी मदालसा है, आपका हाथ लगते ही यह अन्तर्धान हो जायगी। यह सुनते ही राजकुमार मूर्छित होकर गिर पड़े। नागराज और नागकुमारों ने उपचार कर उनकी मूर्छा भंग की। राजकुमार का स्नेह अचल और प्रतिज्ञा दृढ़ देखकर नागराज ने अपनी तपस्या और मदालसा की पुनर्जन्म की सारी कथा बतलाकर उनका विवाह उससे कर दिया। राजकुमार मदालसा को लेकर प्रसन्नता पूर्वक अपने पिता के यहाँ लौट आए।'

अध्याय २५-२६

मदालसा का अपने पुत्रों को ज्ञान देकर विरक्त करना

जड़ (सुमति नामक पुत्र) ने कहा—'राजकुमार ने अपने पिता के पास जाकर मदालसा की प्राप्ति का सारा वृतान्त सुना दिया। राजा को और नगरवासियों को एवं प्रजाजन को बड़ी प्रसन्नता हुई। बड़ा आनन्द-उत्सव मनाया गया। ऋतध्वज मदालसा के साथ वनों,उपवनों आदि में नाना

प्रकार के विहार करने लगे। बहुत काल बीतने पर उनके पिता का स्वर्गवास हुआ। प्रजा के अनुरोध से ऋतध्वज गद्दी पर बैठे और धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करने लगे। कुछ समय बाद उनके पहले पुत्र का जन्म हुआ। ऋतध्वज ने सब की सम्मति से उसका नाम विक्रान्त रक्खा। किन्तु मदालसा ने उसके नाम को सुनकर अट्टहास किया। पहले ही दिन से वह उसे निवृत्ति मार्ग की बातें सुनाने लगी। मदालसा बालक से सदा कहती—'हे पुत्र! तू तो शुद्ध है, तेरा नाम ही क्या हो सकता है? तूने पंच-भौतिक शरीर धारण किया है इस कारण तेरा नाम कल्पित किया गया है। तुम रोते किस लिए हो? किन्तु कहना यह चाहिए कि तुम रोते भी नहीं हो, रोने का शब्द स्वयम् ही उत्पन्न होता है। मनुष्यों का शरीर अन्न-जल पाकर बढ़ता है और उन के न मिलने से घटता है, किन्तु शरीर के घटने बढ़ने से तुममें कुछ वृद्धि या ह्रास नहीं होता। इस शरीर से ममता करना मूर्खता है, क्योंकि यह शुभाशुभ कर्मों का फल मात्र है। केवल मूर्ख लोग ही अपने-पराये की माया में फँसते हैं, दुःखों और भोगों को सुख मानते हैं। स्त्री का शरीर मांस, रुधिर, मज्जा, हड्डी आदि घृणित और नारकीय पदार्थों से भरा हुआ है। उनसे या अपने शरीर में ममता करना केवल मूर्खता है।'

इस प्रकार के उपदेश दे दे कर मदालसा ने अपने पुत्र के हृदय में आत्मबोध प्राप्त करा दिया। राजा ऋतध्वज ने अपने पुत्र को व्यावहारिक ज्ञान का उपदेश देकर उसे राज काज के योग्य बनाने की बड़ी चेष्टा की, किन्तु मदालसा के उपदेश के आगे राजा का उपदेश कोई प्रभाव न डाल सका। पुत्र सब को त्याग कर तप करने के लिए चला गया। कुछ समय बाद मदालसा के दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा ने उसका नाम सुबाहु रक्खा। इस बार भी मदालसा खूब हँसी। इस पुत्र को भी उसने उसी प्रकार निवृत्तिमार्ग का उपदेश देना प्रारम्भ किया। अन्त में वह भी विरक्त होकर चला गया। कुछ समय बाद तीसरा पुत्र हुआ। राजा ने उसका नाम शत्रुमर्दन रक्खा। इस बार भी मदालसा हँसी। यह पुत्र भी माता के उपदेश से आत्म-ज्ञान प्राप्त कर सब को त्याग कर चला गया। कुछ समय बाद चौथा पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा ने उसके नामकरण का उपक्रम किया. इसी समय उन्होंने देखा मदालसा मुस्कुरा रही है। उन्होंने रानी से कहा कि यदि मेरे रक्खे हुये नाम पसन्द नहीं हैं तो इस पुत्र का नामकरण तुम्हीं करो। मदालसा ने उसका नाम अलर्क रखकर कहा कि इस का यश संसार भर में फैल जायगा और यह बड़ा विद्वान होगा।

अलर्क नाम को असंबद्ध समझ कर ऋतध्वज हँसे और

मदालसा से उसका अर्थ पूछा। उसने नम्रता किन्तु दृढ़ता-पूर्वक उत्तर दिया-'पुकारने के लिए कोई भी नाम रख लेना व्यावहारिक बात मानी जाती है। आपने जो तीन नाम रक्खे थे वे सर्वथा निरर्थक थे। पुरुष को विद्वान लोग सर्वव्यापी कहते हैं,देश-देशान्तर में जो गति रक्खे उसे क्रांति कहते है। शरीर का स्वामी ईश्वर सर्वव्यापी होनेके कारण आता-जाता नहीं क्योंकि यदि उसका आना-जान होता रहे तो वह सर्वव्यापी कैसा ? इस कारण 'विक्रान्त' नाम सर्वथा निरर्थक है। चूँ कि पुरुष तो अमूर्त माना गया है, इस कारण उसे मूर्तिमान समझ कर उसको 'सुबाहु' कहना नितांत निरर्थक है। फिर जब इस संसार के सभी छोटे-बड़े शरीरों में एक ही परमात्मा व्याप्त है, तो उसका शत्रु कौन हो सकता है ? शत्रु के मर्दन की कल्पना भी अर्थहीन ही है। ऐसी दशा में यदि आप के रक्खे हुए नाम सार्थक और व्यावहारिक माने जा सकते हैं,तो 'अलर्क' नाम में कौन दोष है, यह भी उसी प्रकार व्यावहारिक और सार्थक है।'

राजा को मदालसा की बात मान लेनी पड़ी। वह पुत्र को पूर्ववत ब्रह्मज्ञान का उपदेश देने लगी। यह देख, चिन्तित हो राजा ने कहा-'तुम यदि इसे भी निवृत्ति के मार्ग में लगा दोगी तो यह राज्य कौन चलायेगा ? मेरा अनुरोध मानों और इस पुत्र को ऐसा उपदेश दो जिससे

प्राणायाम से दोषों को, धारणा से पापों को, प्रत्याहार से विषय को और ध्यान से गुणों को जला डालना चाहिए। प्राण और अपान वायु के रोकने को प्राणायाम कहते हैं। प्राणायाम से प्राण योगी के वश में हो जाते हैं। प्राणायाम तीन तरह के हैं, लघु, मध्यम और उत्तरीय। बारह मात्रा का लघु, २४ का मध्यम, ३६ का उत्तरीय होता है। पहले प्राणायाम से स्वेद को, द्वितीय से कम्पन को और तृतीय से शोक को जीते। ध्वस्ति, प्राप्ति, संवित और प्रसाद, ये चार अवस्थाएँ मुक्ति को देने वाली हैं। अच्छे-बुरे कर्मों के फल से चित्त को हटाना, ध्वस्ति है। इस लोक और परलोक के कामों आदि से निवृत्ति, 'प्राप्ति' है। भूत-भविष्य, ग्रह, नक्षत्र आदि के ज्ञान, प्रभाव आदि में समान भाव, संवित है। जिस प्राणायाम से मन, वायु, इन्द्रियाँ आदि प्रसन्न रहें उसे प्रसाद कहते हैं। शुद्ध भूमि पर उचित आसन लगाकर प्राणायाम प्रारम्भ करे। मन को रोककर वश में करे एवं आत्मा में ही आत्मा को देखे। इसमें प्राणों का निरोध किया जाता है इस कारण इसे प्राणायाम कहते हैं; मन को धारण किया जाता है इससे इसका नाम धारणा है; इन्द्रियों, विषयों आदि से मन को खींचकर पृथक किया जाता है, इससे इसे प्रत्याहार कहते हैं। प्राण-वायु को क्रम से धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए। कण्ठ, मुख,

नासिका के अग्रभाग एवम् दोनों भौंहों के बीच में तथा मूर्द्धा में उत्तरोत्तर जो धारणा की जाती है वह क्रम से उत्कृष्ट मानी जाती है।'

'योगाभ्यास के काल में बहुत बोलना, बहुत चलना, बहुत खाना, बहुत भूखा रहना, अधिक परिश्रम करना, चित्त को व्याकुल करना हानिकर होता है। अधिक ठण्डे, बहुत गरम, बहुत मनुष्यों या तेज वायु से युक्त स्थानों पर; अग्नि, जल के समीप, पुराने मकान में, चौरस्ते पर, श्मशान में, भयपूर्ण स्थान में एवम् अशुद्ध भूमि पर योगाभ्यास न करना चाहिए; नहीं तो अनेक विघ्न और रोग उत्पन्न हो जाते हैं। यदि रोग और विघ्न उत्पन्न हों तो उचित उपायों द्वारा उन्हें शीघ्र दूर करना चाहिए। शरीर की हर तरह से रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति का साधन शरीर ही है। गुप्त रखने से ही योगाभ्यास में अधिक सफलता प्राप्त होती है। जिसे शीत, उष्ण, भय आदि न व्यापें उसे योग में सफल समझना चाहिए।'

'आत्म-दर्शन हो जाने पर भी योगी अनेक विघ्नों में फँस जाता है। उत्तम-उत्तम बातों और क्रियाओं की अभिलाषा, स्त्री, दान का फल, विद्या, धन, स्वर्ग की कामना, देवत्व, अमरत्व, आकाशगमन, अग्नि-जल-प्रवेश, आदि

वश में होकर न तो कुछ मांगना चाहिए और न यज्ञ आदि में जाना चाहिए। बहुत प्रकार के ज्ञान से भी योग में विघ्न पड़ते हैं, इस कारण केवल वही ज्ञान प्राप्त करे जो उसके योगाभ्यास में सहायक हो। चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, त्याग, अलोभ, अहिंसा ये योगी के लिए पाँच परम व्रत हैं। वाग्दण्ड, कर्मदण्ड और मनोदण्ड ये ही मुख्य तीन दण्ड हैं जिनको सिद्ध करलेने पर ही योगी त्रिदण्डी कहलाता है। सम-बुद्धि, प्रमाद रहित, पवित्र, एकान्त वासी, जितेन्द्रिय, नियताहार, बुद्धिमान योगी ही योगाभ्यास करता हुआ मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।'

'विश्वेश्वर, विश्वपाद, विश्वशिर, विश्वभावन परमात्मा का प्रत्यक्ष रूप समझकर ॐ का जप करे। ॐ में का अकार सतोगुण, उकार रजोगुण और मकार तमोगुण का प्रतीक है। ऊपर की अर्ध-मात्रा निर्गुण स्वरूप है। ॐकार के उच्चारण से योगी को समस्त सत् और असत् का बोध होता है, तीनों बन्धन छूट जाते हैं, एवं परमपद की प्राप्ति होजाती है। ॐकार ही वेद, तीनों लोक, तीनों अग्नि, ब्रह्मा, विष्णु, शिव रूप है। ॐकार की साधना से योगी अपने शुभ-अशुभ कर्मों के बंधनों से छूटकर ब्रह्म में लीन होजाता है।'

बहुत ही भयंकर विघ्न समझे जाने चाहिए। इस प्रकार की उत्तम-उत्तम अभिलाशायें ही योगाभ्यास में प्रथम विघ्न हैं। इन विघ्नों से बचने पर वेद-शास्त्र, कला आदि के ज्ञान; दूर-से-दूर के स्थानों को देखने और वहाँ के शब्दों को सुनने और समझने की शक्ति, एवम् अन्य सभी प्रकार के ज्ञान की प्राप्ति की कामना योगी के हृदय में उत्पन्न होती है। इस प्रकार के विघ्न में पड़ जाने की वजह से योगभ्रष्ट होकर योगी बार-बार देव-योनियों में भ्रमण करता रहता है। योगी इस प्रकार के विघ्नों से बचकर क्रमशः पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन और बुद्धि इन सात सूक्ष्मों को धारणकर इनसे निवृत्ति प्राप्त कर ले। इस अवस्था को प्राप्त होने पर अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्रकाम्य, ईशित्व, वशित्व, ऐश्वर्य इन आठ सिद्धियों की प्राप्ति हो जाती है। जो योगी इन आठ सिद्धियों के फन्दे में नहीं फँसता वही परमपद को प्राप्त होता है। सब तरह के भोगों का भोगता और सब प्रकार के कामों को करता हुआ भी जो योगी उनमें लिप्त नहीं होता, वही परब्रह्म को प्राप्त होता है।'

'मान से आसक्ति और अपमान से उद्वेग उत्पन्न होता है। योगी को मान से सदा बचना चाहिए। नेत्र से देखकर पाँव रक्खे, वस्त्र से छानकर जल पिये, सत्य वचन बोले और बुद्धि-विवेक से विचार करे। योगी को कभी भी लोभ के

यह प्रवृत्ति मार्ग में अग्रसर हो और देवता, पितर, ऋषि, अभ्यागत, स्वजन आदि की सेवा-पूजा करता हुआ प्रजा का पालन करे।' मदालसा ने अपने पति को प्रसन्न करने के लिए पुत्र को ब्रह्मज्ञान के साथ-ही-साथ गृहस्थाश्रम और राजधर्म का भी उपदेश दिया।

अध्याय २७

मदालसा द्वारा राज-धर्म वर्णन

जड़ (सुमति नामक पुत्र) बोले—'मदालसा से नाना प्रकार की शिक्षा पाकर अलर्क बड़े हुए। यथा समय उनका यज्ञोपवीत किया गया। वेद-शास्त्र का अध्ययन करने के अनन्तर अलर्क ने अपनी माता के पास जाकर विनयपूर्वक प्रार्थना की कि आप मुझे इस लोक और परलोक के कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में उपदेश दीजिए।

मदालसा बोली—'राज्याभिषेक होने पर राजा का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह प्रजा का मनोरंजन करते हुए धर्म पूर्वक उसका पालन करे। और मूल को नाश करने वाले सात व्यसनों से स्वयम् बचें और प्रजा को बचावे। अपने को शत्रुओं से बचाते हुए मंत्रियों के सहयोग से राज्य को संचालन करें। जिस प्रकार सुन्दर पहिये का रथ उत्तम

होता है, उसी प्रकार मंत्रियोंकी सलाह से राजा भी निश्चयही सुरक्षित रहता है। मंत्रियों में दुष्ट और सज्जन की पहिचान रखनी चाहिए, तथा शत्रुओं के मित्रों पर भी यत्नपूर्वक निगाह रखनी चाहिए। राजा को चाहिए कि अपने मित्रों, भाई-बन्धुओं पर भी विश्वास न करे और यदि मौका हो तो शत्रु का भी विश्वास करले। राजा को चाहिए कि छःगुणों के अनुसार रहे तथा स्थान और हानि,लाभ का ज्ञान रक्खे एवं कभी काम के वशीभूत न हो। राजा पहिले अपने आपको, फिर मंत्रियों को, फिर सेवकों को तथा उसके बाद प्रजा को वश में करे और फिर शत्रुओं का नाश करे। जो राजा अपने को,अपने मंत्रिवर्ग को एवम् अपनी प्रजा को वश में किए बिना ही अपने शत्रुओं का नाश करना चाहता है वह मूढ़ स्वयम् ही शत्रुओं द्वारा नष्ट हो जाता है। क्योंकि जो अपने व्यसनों से छुटकारा नहीं पा सकता, जो अपने मंत्रियों और सेवकों के अधीन रहता है; और अपनी प्रजा को अपने वशीभूत नहीं कर सकता वह अपने शत्रुओं का सामना कैसे कर सकता है। इस कारण राजा को चाहिए कि सबसे पहले व्यसनों से मुक्ति पाकर अपने आप को जीते, इसके अनन्तर अपने सेवकों और मंत्रियों को जीत कर अपने वश में करे और उनका सहयोग प्राप्त करे। फिर उनकी सहायता से अपनी प्रजा और सेना को अपनी

मुट्ठी में करे और इस प्रकार प्रबल शक्ति प्राप्त कर शत्रुओं को नष्ट करे। काम,क्रोध,लोभ,मद,मान,हर्ष ये राजा के सब से प्रबल शत्रु हैं;इन्हें बिना जीते कोई भी राजा न तो खुद बच ही सकता है और न उन्नति ही कर सकता है। असल में इन्हीं शत्रुओं के कारण राजाओं का नाश होता है। काम के कारण राजा पाण्डु का पतन हुआ; क्रोध के कारण अनुसाद का पुत्र मारा गया; लोभ के कारण पुरुरवा का नाश हुआ; मद के कारण राजा वेणु का नाश ब्राह्मणों के द्वारा हुआ; मान के कारण अनायुष का पुत्र बलि और हर्ष के कारण पुरंजय का विनाश हुआ। और इन काम, क्रोध,लोभ आदि आन्तरिक शत्रुओं को जीत लेने के कारण महराज मरुत ने संसार में सब पर विजय प्राप्त की। राजा को कौआ, कोविल,भृंग,मृग,व्याल,मोर,हंस, मुर्गा, लोहा, बन्ध की स्त्री, कमल, पतंग आदि से शिक्षा लेनी चाहिए। राजा को विपद्धिओं से कीट की तरह काम निकाल लेना चाहिए और अपनी चेष्टा चींटी की तरह रखनी चाहिए। अपनी उन्नति और वृद्धि के लिए राजा को सदा सचेष्ट रहना चाहिए। प्रजा का पालन करते समय राजा को इन्द्र, सूर्य, यम,चन्द्रमा और वायु के गुण ग्रहण करने चाहिए। इन्द्र चार मास वर्षा करके संसार को संतुष्ट करते हैं, उसी प्रकार राजा को अपनी प्रजा के अन्न-वस्त्र का प्रबंध कर

उसका पालन करना चाहिए। जिस प्रकार सूर्य आठ महीने बराबर पृथ्वी के विभिन्न भागों से जल के कणों का शोषण करते हैं, उसी प्रकार राजा को प्रजा से सूक्ष्म उपायों द्वारा कर एकत्र करना चाहिए। जिस प्रकार अन्त समय यमराज सब के भले-बुरे कर्मों का विचार कर उसे उचित फल देते हैं, उसी प्रकार राजा को चाहिए कि वह अपनी प्रजा के प्रत्येक प्राणी के भले-बुरे कार्यों का निष्पक्ष होकर विचार करे और उचित दण्ड एवं पुरस्कार की व्यवस्था रक्खे, सज्जन के प्रति उत्तम और दुष्ट के प्रति कठोर व्यवहार करे। जिस प्रकार सभी प्राणी पूर्ण चन्द्रमा को देख कर प्रसन्न होते हैं,उसी प्रकार राजा अपने कार्यों द्वारा सभी प्रजाजन की प्रीति का भाजन बने; उसे अपने कार्यों द्वारा प्रजा को सुखी करना चाहिए। जिस प्रकार वायु गुप्त रूप से सभी के बीच में व्याप्त है, उसी प्रकार राजा को चाहिए कि वह अपने गुप्त-चरों, द्वारा सब में घुस कर सब के भेदों को प्राप्त करता रहे। राजा जैसे भी हो धर्म की स्थापना और रक्षा करता रहे। प्रजा की रक्षा, पालन और उसकी समृद्धि करते रहकर ही राजा सुखी रह सकता है और धर्म तथा स्वर्ग का भागी होता है। प्रजा को सुखी रखने से ही राजा इस लोक और परलोक में पूजा जाता है।

अध्याय २८-२६

वर्णाश्रम धर्मों का वर्णन

जड़ (सुमति नामक पुत्र) बोले–'अलर्क ने अपनी माता से वर्णाश्रमधर्म के सम्बन्ध में पूछा।

मदालसा ने कहा–'दान देना, अध्ययन और यज्ञ करना ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों के ये तीन धर्म हैं। यज्ञ कराना, पढ़ाना, और पवित्र दान लेना यह तीन प्रकार की जीविका ब्राह्मण की है। पृथ्वी की रक्षा और शस्त्र से जीवन निर्वाह करना ही क्षत्रिय की जीनिका है। वाणिज्य और पशुपालन एवं कृषि वैश्य की जीविका है। दान और यज्ञ करना एवम् द्विजातियों की सेवा यही शूद्रों के धर्म हैं। शिल्पकर्म, सेवा, खरीदना-बेचना यह शूद्र की जीविका है। मनुष्य को अपने-अपने धर्म से ही सिद्धि और कल्याण की प्राप्ति होती है। उपनयन के अनन्तर द्विजातियों को गुरू के यहाँ रहकर यम-नियम का पालन करते हुए स्वाध्याय और अग्निहोत्र करना चाहिए, एवम् भिक्षा से प्राप्त अन्न को गुरु के अर्पण करना चाहिए। इसमें से जितना अन्न वे दें उतने में ही संतुष्ट रहना चाहिए। अध्ययन समाप्त करने के अनन्तर गुरु-दक्षिणा देकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहिए। अपने गोत्र से भिन्न गोत्र की नीरोग,

स्त्रियोचित गुणों से युक्त,उपयुक्त कन्या से विवाह कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे और विधिपूर्वक धनोपार्जन कर देवता, पितर, अतिथि की पूजा करता हुआ अपने आश्रितों का पालन-पोषण करे। ऋतुकाल में पत्नी के पास जाना परमावश्यक है। गृहस्थ पंच महायज्ञों को कभी न छोड़े।

'गृहस्थाश्रम से ही दूसरे आश्रमों का पोषण होता है, इस कारण गृहस्थाश्रम अन्य आश्रमों के लिएमाता के समान है। देवता, पितर, ऋषि, मुनि, वानप्रस्थ, संन्यासी, भूत-प्रेत, असुर, गन्धर्व, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, आदि सभी गृहस्थाश्रम के ऊपर निर्भर रहते हैं। वेदों का मत है कि गृहस्थाश्रम ही सब का आधारभूत और कामधेनु के समान है। स्वाहाकार, स्वधाकार, वषट्कार और हन्तकार ही इस गृहस्थाश्रम रूपी कामधेनु के दूध देनेवाले स्तन हैं, जिनसे देवता, पितर आदि सब की तृप्ति होती है। स्वाहाकार स्तन को देवता, स्वधाकार को पितर, वषट्कार को ऋषि-मुनि, एवम् हन्तकार को मनुष्य आदि प्राणी पीकर अपनी पुष्टि करते हैं। जो गृहस्थाश्रम रूपी इस काम-धेनु का विधिपूर्वक निर्वाह और पालन करते हैं, उन्हें सुख-शान्ति, स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति अनायास ही हो जाती है। एवम् जो इसकी उपेक्षा, अवहेलना करते हैं,उन्हें इसलोक और परलोक में कहीं भी शान्ति एवम् सत्गति प्राप्त नहीं

होती । गृहस्थ को चाहिए कि स्नान आदि से पवित्र होकर पूजन,आराधना के अनन्तर विधिपूर्वक देवता, पितर आदि को बलि देवे, एवम् अतिथि, अभ्यागत, ब्राह्मण, संकटापन्न व्यक्ति आदि को भोजन करावे । फिर स्वजनों के साथ भोजन करे और अपने आश्रितों का भरण-पोषण करे ।'

'गृहस्थाश्रम का पालन करते-करते जब मनुष्य के पुत्र आदि सम्पन्न हो जायँ तब वह वानप्रस्थ-आश्रम में प्रवेश करे । वानप्रस्थ-आश्रम में मनुष्य को नित्यप्रति तीन बार स्नान-हवन, ब्रह्मचर्य-पालन, जटा-वल्कल धारण, पृथ्वी-शयन एवम् इन्द्रिय-दमन करना चाहिए । योगाभ्यास द्वारा जब मनुष्य अपनी वृतियों को शान्त कर ले तब संन्यास ग्रहण करे । संन्यास आश्रम में विषयों का त्याग, ब्रह्मचर्य, क्रोध का दमन, जितेन्द्रियता, परिभ्रमण, (एक स्थान पर बहुत समय तक न रहना) भिक्षा द्वारा मिले हुए अन्न को एकबार ग्रहण करना, एवम् आत्म-चिन्तन में निरन्तर लीन रहना परम आवश्यक है ।

'ऊपर प्रत्येक आश्रम के धर्म एवं कर्त्तव्य पृथक-पृथक बतलाये गये हैं । कुछ ऐसे धर्म हैं जिनका पालन चारों आश्रम वालों को समान रूप से करना चाहिए । सत्य, पवित्रता,अहिंसा, डाह न करना, क्षमा, अक्रूरता, उदारता, संतोष, ये आठ ऐसे धर्म हैं जिनका पालन सभी आश्रम

वालों को करना चाहिए। जो अपने वर्ण एवं आश्रम के धर्म को पालन नहीं करता उसे सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती। राजा को चाहिए कि ऐसे व्यक्ति को कठोर दण्ड देकर धर्म की स्थापना करे।'

'सब आश्रमों में गृहस्थाश्रम विशिष्ठ है। महर्षि अत्रि का कथन है कि गृहस्थ दूसरे आश्रमवालों का एवं देवता, पितर, पशु,पत्ती, आश्रितवर्ग आदि का पालन करता हुआ अक्षय पुण्य का भागी होता है।'

—:o:—

अध्याय ३०-३३

नित्य, नैमित्यिक कर्म, श्राद्ध और उसकी विधि

मदालसा ने कहा—'गृहस्थ के नित्य, नैमित्यिक, नित्य-नैमितिक,एवं त्रिविधात्मक कर्म हैं। पंचयज्ञ आदि जो कर्म प्रतिदिन किये जाने चाहिए उन्हें नित्य-कर्म कहते हैं। पुत्र-जन्म आदि के सम्बन्ध में जो समय-समय पर कार्य करने आवश्यक होते हैं उन्हें नैमित्यिक कहते हैं। पर्व, श्राद्ध आदि नित्य-नैमित्तिक कर्म कहे जाते हैं। पुत्र-जन्म के अवसर पर जातकर्म, नान्दीमुख-श्राद्ध करे एवं पितरों को दधि और यव मिले हुए पिण्ड दे। जिस दिन जिसकी मृत्यु हो उस दिन उसकी श्राद्ध की जाती है। इसे एको-

दुदिष्ट श्राद्ध कहते हैं। उस दिन देवपूजन, अग्निकरण, आवाहन आदि नहीं किये जाते। इस प्रकार बराबर एक वर्ष व्यतीत होने पर सपिन्डीकरण करें। स्त्री का भी एकोदुदिष्ट एवं सपिंडीकरण करना चाहिए।'

श्राद्ध के लिए शुक्ल पक्ष की अपेक्षा कृष्ण पक्ष, दोपहर के पहले की अपेक्षा दोपहर के बाद का समय अधिक उपयुक्त माने गए हैं। देव-कार्य में सम और श्राद्ध में विषम संख्या में ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। देवताओं के लिए पूर्व मुख और पितरों के लिए उत्तर मुख संकल्प करना चाहिये। विधिपूर्वक पूजन-तर्पण के अनन्तर काव्य वाहाय-स्वाहा, सोमायवै पितृ-मते स्वाहा, यमायप्रे तपतयैस्वाहा, इन मंत्रों से अग्नि में आहुति देना चाहिए। आहुति से बचे हुए अन्न को ब्राह्मणों को खिलाना चाहिए। रक्षोघ्न मंत्र से तिलों का पृथ्वी पर बिखेर दे और कुछ अन्न चारों तरफ छोट दे। तर्जनी अँगुली और अँगूठे के बीच में होकर पितरोंको जलदान करना चाहिए। भोजन के अनन्तर ब्राह्मणों को स्वधा कह कर दक्षिणा देना चाहिए। पितरों की तृप्ति के लिए प्रति दिन भी तर्पण आदि करना आवश्यक है। श्राद्ध के लिए उत्तम विप्र, योगी, वेदज्ञ, श्रेष्ठ पुरुष, नाती, जमाई, पुरोहित, शिष्य को बुलाना श्रेयकर होता है। एक कर्म-निष्ठ योगी श्राद्ध के लिए एक हजार ब्राह्मणों से अधिक श्रेष्ठ माना

गया है। प्रायश्चित करने वाला, रोगी, अंगहीन अधिक-अंग वाला, काना, दोगला, मित्र-द्रोही, खराब-नख-वाला, नपुंसक, काले दाँतों वाला, कुरूप, पतित, वैद्य, दासों को पढ़ाने वाला, पर-स्त्री-गामी, वेदों को न माननेवाला ब्राह्मण श्राद्ध के लिए वर्जित है। मक्का, उड़द, मसूर, नमक, लहसुन, प्याज, मूली, रंगीन वस्त्र, दूषित स्थान का जल; मृगी, बकरी, उँटनी, तत्काल बच्चा देने वाली गौ का दूध, एवं श्राद्ध के नाम से माँगा हुआ दूध; जानवरों से भरी, रूखी, अग्नि से जली हुई पृथ्वी; अनिष्ट वस्तु, दुष्ट-शब्द; दुर्गन्धि अथवा कृमि-कीटों से भरा हुआ स्थान; मुर्ग, सुअर, कुत्ता, रजस्वला-स्त्री, पतित, सूतक में पड़ा हुआ व्यक्ति, संन्यासी, नीच दासी, कपड़े की हवा से सुखाई गई वस्तु, यह सब श्राद्ध कर्म में वर्जित हैं। श्राद्ध के समय क्रोध करना, मार्ग चलना और जल्दबाजी करना अत्यन्त वर्जित हैं। श्राद्ध के लिए चाँदी और चाँदी के पात्र बहुत ही उत्तम माने गए हैं।

'विभिन्न पदार्थों से पितरों को विभिन्न काल तक तृप्ति प्राप्त होती है। हविष्यान्न से एक महीने; मछली से दो महीने; हिरण के मांस से पाँच महीने; शूकर के मांस से छः महीने; बकरे के मांस से सात महीने बारहसिंघे के मांस से आठ महीने; चित्रांग के मांस से नौ महीने; गवय के मांस से दस महीने; उरभ्र के मांस से ग्यारह महीने और खीर से बारह महीने और

खीर से बारह महीने के लिए पितरों को तृप्ति प्राप्त होती है। श्राद्ध से तृप्त होकर पितृगण आयु, बुद्धि, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, सुख-शान्ति प्रदान करते हैं। विभिन्न नक्षत्रों और तिथियों में श्राद्ध करने से मनुष्य को विभिन्न प्रकार के फल प्राप्त होते हैं। तत्वों के जानने वाले विधिपूर्वक विभिन्न तिथियों और नक्षत्रों में विभिन्न पदार्थों द्वारा श्राद्ध कर पितरों को प्रसन्न करके मन चाहा फल प्राप्त करते हैं।'

अध्याय ३४-३६

मदालसा द्वारा सदाचार का उपदेश, अलर्क को राज्य

मदालसा ने कहा—'गृहस्थ को देवता, पितर, भूत-प्रेत, पशु-पक्षी, अतिथि अभ्यागत, भिखारी-याचक, बन्धु-बान्धव, आश्रित-सेवक आदि को अन्न आदि से संतुष्ट करते रहना चाहिए। जो गृहस्थ नित्य-नैमित्यिक क्रियाओंका उल्लङ्घन कर के भोजन करता है, वह पाप का भागी होता है। गृहस्थ के लिए सदा-चारी होना सब से अधिक आवश्यक है। आचार-विहीन होने पर गृहस्थ को न इस लोक में सुख मिलता है, न पर लोक में। सदाचार के बिना यज्ञ, दान, तप आदि किसी का भी फल नहीं मिलता। आचार के बिना उत्तम आयु और सुख की प्राप्ति भी नहीं होती।

सदाचार के बल पर मनुष्य अपने कुलक्षणों से भी त्राण पा जाता है। गृहस्थ को अपनी आय के आधे भाग से अपना भरण,पोषण करना चाहिए,चौथाई भाग से परलोक को सुधारना चाहिए और बचे हुए भाग से भविष्य के लिए सुरक्षित कोष स्थापित करना चाहिए। धन को इस प्रकार बाँट कर काम में लाने से ही मनुष्य का कल्याण होता है। काम, क्रोध आदि को वश में करके ही मनुष्य इस संसार में सफल हो सकता है। कुछ कार्य भय के कारण और कुछ कार्य विरोध को दूर करने के लिए किए जाते हैं। धर्म,अर्थ और काम की सिद्धि के लिए मनुष्य को इन सब बातों का ध्यान रख कर कार्य करना चाहिए। ब्रह्म-मुहूर्त में उठ कर मनुष्य को धर्म, अर्थ का चिन्तन एवम् कार्य में जो कठिनाइयाँ हों उनका वेद-तत्व से विवेचन करना चाहिए। प्रातः सन्ध्या एवं सायं-सन्ध्याः दोनों समय हवन तथा देव-पितृ कार्य परम आवश्यक हैं। स्नान,शृंगार,देव-कार्य आदि दिन के पूर्व भाग में करलेना चाहिए। मिथ्या प्रलाप,असत्य वचन,कुशास्त्र का पाठ,व्यर्थवाद,दुष्टों का साथ सर्वथा त्याग देना चाहिए। जूठे मुँह या अशुद्ध होकर बात-चीत करना, स्वाध्याय, गौ, ब्राह्मण, अग्नि और अपने सर को छूना, सूर्य-चन्द्र-तारागण एवम् देवगण तथा गुरू को देखना और शैय्या पर जाना वर्जित है। केवल एक वस्त्र धारण किये हुए भोजन

करना या देवताओं को पूजना वर्जित है। ब्राह्मण, राजा, दुःखी, आतुर, विद्वान, गर्भवती स्त्री, बोझ से लदे हुए व्यक्ति, अन्धा, बहिरा, मतवाला, दुष्टस्त्री, शत्रु, बालक एवम् पतित को सामने से आता हुआ देख उसके लिए रास्ता छोड़ दे। दूसरे के पहिने हुए जूते, वस्त्र, माला, जनेऊ आदि को न पहनना चाहिए। चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या एवम् अन्य पर्वों पर तेल लगाना और स्त्री संग करना वर्जित है। बैठकर पाँव या जाँघ हिलाना और पैर-पर-पैर रखना दूषित है। व्यर्थ में किसी की हँसी उड़ना उचित नहीं होता, विशेष कर मूर्ख, उन्मत्त, व्यसनी, कुरूप, मायावी, अंगहीन का कभी मजाक न उड़ावे। सूर्योदय और सूर्यास्त के समय सोना अनुचित है। दुःशील, चोर, फिजूल खर्च करनेवाले, लोभी, दूसरों का अहित करनेवाले, निन्दित पुरुष, कायर एवम् कपटी से कभी मित्रता न करे। जहाँ ऋणदाता, वैद्य, पंडित, जलवाली नदी न हो वहाँ वास न करना चाहिए। जहाँ सज्जन और सुशील पुरुषों का वास हो वहाँ रहने में सुख प्राप्त होता है।

'कल्याण चाहने वाले मनुष्य को शुद्ध वस्तुओं को ग्रहण करना और अशुद्ध वस्तुओं को त्याग करना चाहिए। विभिन्न पदार्थ विभिन्न रीति से शुद्ध किये जा सकते हैं। मृत्यु अथवा जन्म के कारण सम्बन्ध, वर्ण, कालादि के अनु-

सार शुद्ध होने के लिए विभिन्न काल निश्चित किये गये हैं। नित्य वेद-शास्त्र का अध्ययन, ज्ञानियों की संगति एवं धर्माचरण करते रहने से मनुष्य सदा उन्नति करता जाता है। जिन कर्मों के करने से निन्दा न हो और जिन्हें श्रेष्ठ जन करते हों ऐसे ही कर्मों के करने से मनुष्य को धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि और इह-लोक एवं परलोक में सुख की प्राप्ति होती है।'

जड़ (सुमति नामक पुत्र) बोले—'अपनी माता से इस प्रकार के उपदेश पाकर अलर्क कृतकृत्य हो गये। युवावस्था प्राप्त होने पर उन्होंने माता-पिता से आज्ञा लेकर एक सुन्दरी राज-कन्या से विवाह किया एवम् गुणी और पराक्रमी पुत्र उत्पन्न किया। बहुत काल व्यतीत होने पर राजा ऋतध्वज अपने पुत्र अलर्क को राजगद्दी पर बैठालकर तप करने के लिए वन में चले गए। अपने पति के साथ वन जाते हुए मदालसा ने अपने पुत्र अलर्क को एक सुन्दर सोने की अँगूठी देकर कहा—'इस अँगूठी में एक पत्र है जिस पर मैंने बहुत ही सूक्ष्म अक्षरों में आवश्यक ज्ञानोपदेश अंकित कर दिया है। यदि किसी समय तुम बन्धु-बान्धवों के वियोग से, शत्रु की बाधा से, धन एवं प्रिय-जनों के नाश से अथवा अन्य किसी कारण से अत्यन्त दुःखी हो जाओ तो तुम इस अँगूठी में से उस पत्र को

निकालकर पढ़ना ।'

ऋतध्वज और मदालसा के तप के लिए वन में चले जाने के अनन्तर अलर्क धर्मपूर्वक राज्य करने लगे ।'

अध्याय ३७-३८

अलर्क भोग में आसक्त; काशिराज से पराजय, आत्म-ज्ञान,

जड़ (सुमिति) बोले—'अलर्क धर्म-पूर्वक प्रजा का पालन करने लगे । वे धर्म से धन प्राप्त करते, फिर धन से धर्म की साधना करते और धन एवं धर्म की सिद्धि के अनन्तर सुखोपभोग में लगते । इस प्रकार धर्म,अर्थ काम का साधन करते हुए वे समय बिताने लगे । कुछ काल बाद आनन्द उपभोग में वे पूरी तरह से फँस गए। उनके अनेक वीर, विद्वान,गुणी पुत्र हुए और उन्होंने बहुत काल तक सब प्रकार के सुख भोगे, किन्तु भोगों से और राज्य से उनका मन न भरा । यह देख उनके भाई सुबाहु ने तप करते-करते वन में सोचा कि यदि शीघ्र कोई उपाय न किया गया तो मेरे भाई अलर्क को मोक्ष की प्राप्ति न हो सकेगी । यह सोचकर वे काशिराज के पास गए और बोले कि मैं अलर्क से बड़ा हूँ,न्यायपूर्वक राज्य तो मुझे मिलना चाहिए । आप ऐसा उपाय कीजिए जिससे मेरा राज्य मुझे मिल जाय ।

'काशिराज ने सुबाहु की बात मान कर अलर्क के पास दूत द्वारा कहला भेजा कि तुम अपने बड़े भाई को राज्य देदो, इसी में तुम्हारा कल्याण है। अलर्क ने कहला भेजा कि यदि मेरे भाई मेरे पास आकर राज्य माँगते तो मैं देदेता, अब दूसरे के भय दिखलाने से मैं राज्य नहीं दूँगा। उत्तर पाकर काशिराज ने अपने वचन को पूरा करने के लिए एक बड़ी सेना लेकर राजा अलर्क पर चढ़ाई करदी। युद्ध में बहुत से वीर मारे गये। फिर काशिराज ने धन, भूमि आदि देकर अलर्क के मंत्री,सामन्त, सेवक, सेना आदि को मिला लिया। फिर क्या था। अलर्क के हाथ से राज्य निकल गया। वे बहुत व्याकुल हुए। उस समय उन्हें अपनी माता मदालसा की दी हुई अँगूठी की याद आई। उन्होंने उसमें से उस लेख को निकालकर पढ़ा। उसमें लिखा था:—

—'मनुष्य को संसार में सबका संग छोड़ देना चाहिए। और यदि वह संग छोड़ने में समर्थ न हो तो, फिर सज्जन पुरुषों का संग करना चाहिए,क्योंकि सज्जनों का संग औषधि के समान है। काम को भी त्याग देना चाहिए और यदि काम का त्याग न हो सके तो मोक्ष की कामना में मन को लगा दे, क्योंकि मोक्ष ही काम की औषधि है।'

इस लेख ने राजा की ज्ञान-दृष्टि खोल दी। वे सब का मोह छोड़ कर भगवान दत्तात्रेय जी के पास गये

और प्रणाम कर बोले—'मैं शरण में आया हूँ। मैं अति कामी और दुःखी हूँ, मेरे दुःख को दूर कीजिये।'

दत्तात्रेयजी ने कहा—'मैं तुम्हारे दुःख को दूर कर दूँगा। पर यह तो बतलाओ कि यह दुःख हुआ कैसे ?'

उनके प्रश्न ने राजा को विचार में डाल दिया। उन्होंने तीनों प्रकार के दुःखों पर और उनके स्थान एवं आत्मा पर विचार किया। देर तक विचार करने के अनन्तर अलर्क हँसकर बोले—'मैं पृथ्वी,जल, वायु, अग्नि, आकाश इनमें से कुछ भी नहीं हूँ। सुख की आशा शरीर को ही है और पंच तत्वों से बना हुआ यह शरीर ही बढ़ता-घटता एवं सुख-दुख का अनुभव करता है। आत्मा तो सभी में समान है। एक शरीर के सुख-दुःख का अनुभव दूसरे शरीर में रहनेवाली आत्मा को नहीं होता। जीव तो न छोटा होता न बड़ा; वह नित्य है, उसमें कोई विकार नहीं होता। सुख-दुःख की स्थिति मन में है। मैं मन,शरीर,अहङ्कार,बुद्धि से पृथक् हूँ, इस कारण सांसारिक सुख-दुःख से परे हूँ। जिस राज्य को लेने का विचार मेरे भाई सुबाहु ने किया है उससे तो शरीर का ही सम्बन्ध है और शरीर के गुणों में मेरी प्रवृत्ति नहीं है क्योंकि शरीर में स्थित होकर भी उससे पृथक् हूँ। शरीर में हड्डियाँ,मांस,हाथ,पैर,सर आदि होते हैं, किन्तु वे भी शरीर के नहीं रहते, तो फिर हाथी,घोड़े, रथ,

राज्य आदि उसके कैसे हो सकते हैं। इस संसार में मनुष्य का सम्बन्ध क्षणिक है। इस कारण यहाँ न तो कोई मेरा शत्रु है न मित्र;न मुझे दुःख है न सुख और न सेना,नगर कोष, हाथी, घोड़े, राज्य आदि ही मेरे हैं और न किसी दूसरे के। जिस प्रकार आकाश तत्व के एक रहने पर भी घड़ा, कमण्डल आदिका आकाश स्थान भेद के कारण अलग-अलग दिखलाई पड़ता है, उसी प्रकार आत्मा, तत्व-रूप में एक होनेपर भी अलर्क,काशीराज,सुबाहु आदि में पृथक-पृथक समझ पड़ती है। इसमें केवल शरीरों की ही भिन्नता है। यथार्थ में सब एक ही है।'

यह सब सोचने के बाद राजा अलर्क ने हाथ जोड़कर दत्तात्रेयजी से कहा-'मुझे आत्मज्ञान होगया,इस कारण मुझे कोई भी दुःख नहीं है। दुःख तो उन्हीं को होता है, जिन्हें आत्मज्ञान नहीं होता। मनुष्य का मन जिस-जिस वस्तु से आसक्ति रखता है,उसी-उसी वस्तु के कारण उसे दुःख होता है। यदि किसी चूहे,पक्षी आदि को बिल्ली खाले तो मनुष्य को दुःख नहीं होता,किन्तु,यदि उसके किसी पालतू पशु को कोई खाले तो उसे बड़ा दुःख होता है। मैं तो प्रकृति से परे हूँ, मुझे न कोई दुःख है, न सुख।'

दत्तात्रेयजी प्रसन्न होकर बोले-'तुमने जो कहा, वह यथार्थ ही है। ममता ही सब दुःखों का कारण है। 'यह मेरा

है' यही ममत्व का भाव दुःख का कारण होता है। जब ममता दूर होजाती है,तब निवृत्ति हो जाती है। संसार में अज्ञानरूपी महावृक्ष फैला हुआ है। इस (वृक्ष) का अंकुर 'अहङ्कार' (ममत्व) है; स्कंध मेरापन है; बड़ी-बड़ी शाखाएँ घर, पृथ्वी आदि हैं;पत्ते धन-धान्य-स्त्री-पुत्रादि हैं। पुष्प पाप-पुण्य और फल सुख-दुःख हैं। मूर्खों के साथ रूपी जल से इस वृक्ष को पुष्टि मिलती है; कार्य संबन्धी विधि-(निषेध) रूपी भ्रमर इस पर गूँजते हैं। जो सत्संग रूपी पाषाण पर विद्यारूपी कुल्हाड़ी को तेजकर इस ममता-रूपी अज्ञान-महा-वृक्ष को काट डालते हैं वे ही मोक्ष के मार्ग को प्राप्त कर सकते हैं। सब ज्ञान का तत्व इतना ही है कि शरीर और आत्मा एक में रहते हुए भी उसी प्रकार अलग-अलग हैं जैसे गूलर का फल और उसके अन्दर रहनेवाले छोटे-छोटे भुनगे। क्षेत्रज्ञ पुरुष सब से परे है।'

राजा ने हाथ जोड़कर कहा—'मेरा मन विषयों में आसक्त है और स्थिर भी नहीं है। मुझे वह योग बतलाइये जिससे मैं आवागमन से छूटकर निर्गुणता को प्राप्त हो शाश्वत परब्रह्म में लीन हो जाऊँ।'

—:०:—